R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
जनवरी 2018
अंक 12

तपोभूमि

मासिक

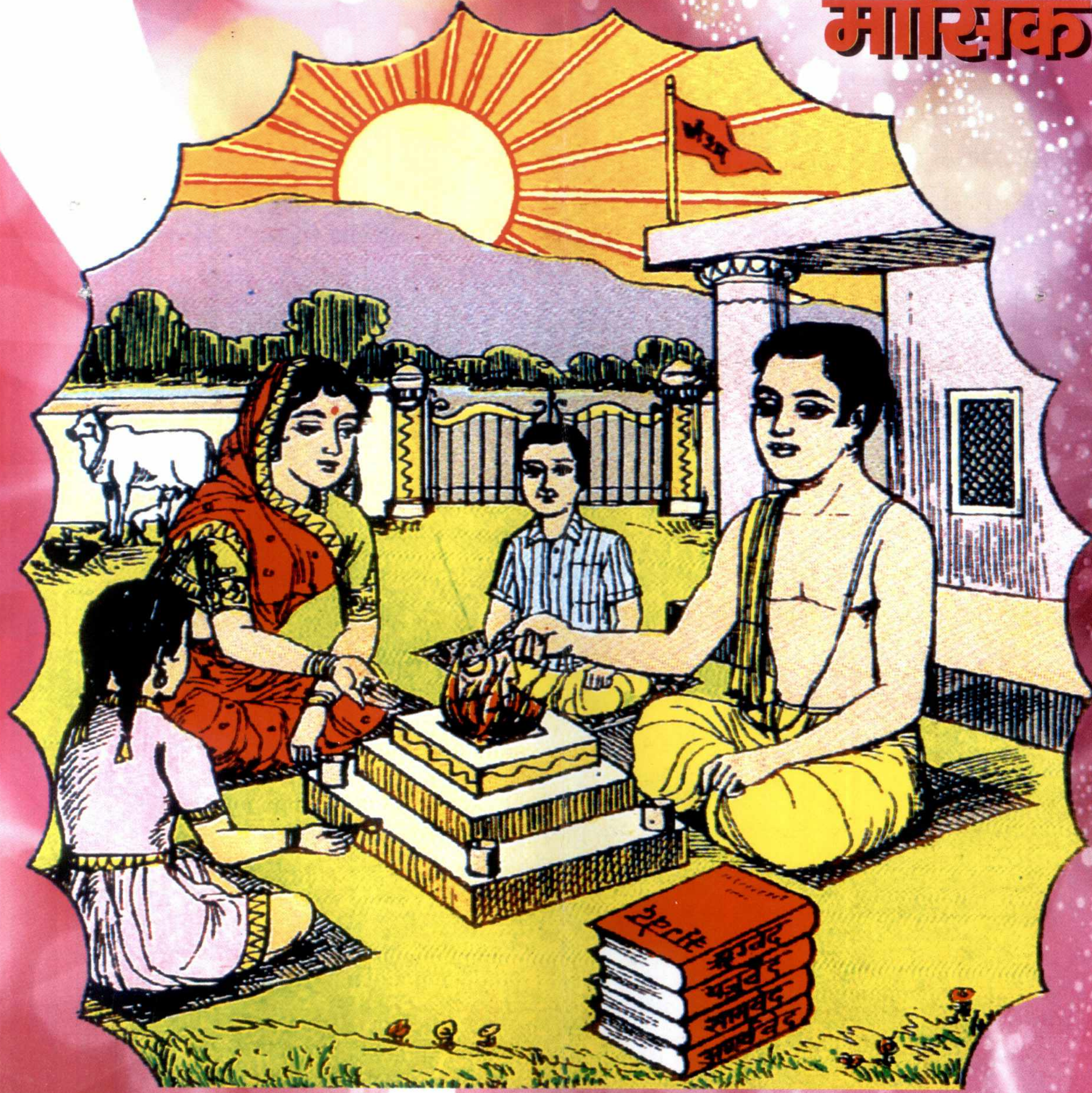

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर मथुरा में चतुर्वेद पारायण यज्ञ उत्साह सहित सम्पन्न

परमपिता परमात्मा हम लोगों के माता-पिता के समान है हम सब उसकी प्रजा हैं इसलिए हम सब पर वह नित्य कृपादृष्टि रखता है। जैसे अपनी सन्तानों के ऊपर माता-पिता सदैव करुणा को धारण करते हैं। वह चाहते हैं कि हमारी सन्तान सदा सुखी रहे, वैसे ही परमपिता भी सब जीवों पर कृपादृष्टि सदैव रखता है। बिना ज्ञान के हमारा कल्याण सम्भव नहीं है। इसलिए सृष्टि के आदि में ईश्वर ने अपने ज्ञान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रकाश चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के मन में किया फिर उन्होंने सब भूगोल में वेद विद्या को फैलाया जिनको पढ़-पढ़ा और सुन-सुना के हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त किया उससे परम ज्ञान प्राप्त करके अपने मानव जीवन को धन्य कर गये इसी बात को ध्यान में रखकर विगत आठ वर्षों से चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन बड़ी भव्यता से किया जाता है।

इस वर्ष भी कार्यक्रम की निश्चित तिथि 6 दिसम्बर से 25 दिसम्बर तक कार्यक्रम निरन्तर बड़े श्रद्धापूर्ण वातावरण में चलता रहा। प्रतिदिन प्रातः 9 बजे से 12 बजे तक दोपहर बाद 2 बजे से 5 बजे तक आयोजन सफलता पूर्वक चला। इस आयोजन में विभिन्न जनपदों से यजमानों ने आकर यज्ञ में आहुति देकर अपने जीवन को धन्य किया। आगरा, ग्वालियर, धौलपुर, भिण्ड, मुरैना, इटावा, औरैया, कानपुर, कन्नौज, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, फिरोजाबाद, सिरसागंज, एटा-कासगंज, बरेली, बदायूं, सम्भल, अलीगढ़, खुर्जा, बुलन्दशहर, अनूपशहर, हापुड़, हरदुआगंज, हाथरस, गाजियाबाद, मेरठ, बागपत, फरीदाबाद, दिल्ली, गुड़गांव, महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी, पलवल, नारनौल, बहरोड, अलवर, भरतपुर, जयपुर, बगरू आदि स्थानों से यजमानों ने आकर इस यज्ञ में आहुति देकर मानव जीवन को धन्य किया। यज्ञ के मध्य में राजस्थान के लोकायुक्त माननीय श्री सज्जनसिंह कोठारी भी पत्नी सहित पधारे और यजमान के रूपमें श्रद्धा सहित आहुतियाँ प्रदान की। ज्ञातव्य है कि माननीय कोठारी जी चार पीढ़ी से आर्यसमाज से जुड़े हुए हैं। आपके माननीय दादाजी ने महर्षि दयानन्द जी से राजस्थान की मसूदा रियासत में यज्ञोपवीत लिया था। तभी से यह सारा परिवार परमपरागत रूप से महर्षि दयानन्द का भक्त और आर्यसमाज के प्रति पूर्ण निष्ठा से समर्पित हैं। माननीय कोठारी जी और उनकी धर्मपत्नी न केवल विद्याप्रिय हैं अपितु दोनों में गहरी आस्थिक भावना भी है जिसका प्रकाश यज्ञ के बाद माननीय कोठारी जी द्वारा श्रद्धालुओं को दिये गये व्याख्यान से हुआ। व्याख्यान से पूर्व उच्चारित वेदमंत्र और आर्यभाषा में

-शेष पृष्ठ सं0 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–63 संवत्सर 2074 जनवरी 2018 अंक 12

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जनवरी 2018

सृष्टि संवत्
1960853118

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
स्वतंत्रता	–श्यामबिहारी मिश्र	5–8
विरजानन्द प्रकाश	–भीमसेन शास्त्री	9–12
यज्ञ, देवता और ऋषि आदि	–स्वामी सत्यानन्द महाराज	13–16
विचारवान् साहसी पुरुषों द्वारा उन्नति के मार्ग का खुलना	–बाबू सूरजभान वकील	17–18
स्वास्थ्य चर्चा		19–22
आर्य संस्कृति की श्रेष्ठता	–पं0 मदनमोहन विद्यासागर	23–26
है 'सत्यार्थ प्रकाश' महावरदान	–प्रियवीर हेमाइना	27
प्रतिभा में पंख लगाइये		28–29
अब कभी नहीं		30–31
परीक्षा		32–33
गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन का वार्षिकोत्सव		34

❋❋❋

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार

स्वर्गलोक की समृद्धि

घृतह्रदा मधुकलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।।

–अथर्व0 4.34.6

शब्दार्थः–

(घृतहृदाः) घी के सरोवरोंवाला, (मधुकूलाः) मधु के तटोंवाली, (सूरोदकाः) आसव–अरिष्टों के रसोंवाली, (क्षीरेण) दूध से, (उदकेन) जल से, (दध्ना) दही से (पूर्णाः) भरी हुई, (मधुमत् पिन्वमानाः) माधुर्य के साथ सींचती हुई (एताः सर्वाः धाराः) ये सब धाराएँ (स्वर्गे लोके) स्वर्गलोक में (त्वा उप यन्तु) तुझे प्राप्त हों। (समन्ताः) किनारों तक भरी हुई, (पुष्करिणीः) कमलों से अलंकृत सरसियाँ (त्वा उप तिष्ठन्तु) तेरे समीप उपस्थित रहें।

भावार्थः–

जो मनुष्य सत्कर्म करते हैं उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है और दुष्कर्म करनेवाले नरक में जाते हैं यह प्रवाद सर्वत्र प्रचलित है। किन्तु ये स्वर्ग और नरक कहीं आकाश में नहीं हैं, इस पृथ्वी पर ही हैं। कष्टमय जीवन ही नरक है, जो मनुष्य–योनि में भी मिल सकता है और पशु–पक्षी–कीट–पतंग आदि की योनियों में भी। सुखमय स्वर्गलोक मनुष्योनि में ही है, और जैसा उस स्वर्ग का चित्रण किया गया है उससे प्रतीत होता है कि यह सुखी परिवार का गृहस्थलोक ही है। 'विष्टारी ओदन' को जो पकाते हैं, उन्हें प्रकाशमय स्वर्गलोक मिलता है। विष्टारी ओदन को पकाने का आशय है शक्ति का विस्तार करनेवाले ब्रह्मचर्याश्रम को परिपक्व करना। मन्त्र कह रहा है कि ब्रह्मचर्याश्रम को परिपक्व कर लेने के बाद जो स्वर्ग मिलता है, उसमें ऐसी धाराएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें घी के सरोवर भरे होते हैं, मधु के तट होते हैं, सुरा का जल होता है। सुरा से अभिप्रेत है विभिन्न प्रकार के आसव, अरिष्ट, फलों के रस आदि। वे धाराएँ दूध, दही और रसों से भरी होती हैं। इस स्वर्ग में पुष्करपत्रों से अलंकृत सरसियाँ लबालब भरी शोभायमान होती हैं। इस प्रकार पुण्य से कमायी गयी समग्र भोग्यसामग्री से गृहस्थ–स्वर्ग भरपूर होता है, सकल समृद्धि उसमें विद्यमान होती है। आधुनिक समृद्धि की भाषा बोलें तो फ्रिज, टेलीवीजन, कैमरे, बिजली के पंखे, इन्वर्टर, सोफा सैट, वातानुकूलित कक्ष आदि सब प्रकार की सजधज से गृहस्थस्वर्ग भरपूर होता है। किशमिश, मुनक्का, काजू, बादाम, मिश्री, मधु, रसीले फल, कन्द, विविध मिष्टान्न, रस आदि खाद्य–पेय सामग्री भी उपस्थित रहती है। मनोरंजन के सब साधन विद्यमान रहते हैं, यातायात के प्रशस्त साधन रथ, मोटरकार, टैक्सी, जलपोत, विमान आदि सुलभ होते हैं। सेवा के लिए सेवक भी रहते हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम रूप विष्टारी ओदन को परिपक्व करने के पश्चात् जो इस स्वर्ग में आना चाहते हैं, उनका स्वागत है। ❁❁❁

स्वतंत्रता

लेखकः– श्यामबिहारी मिश्र

संसार में स्वतंत्रता सब को प्रिय है और एक प्रकार से सब का इस पर सहज अधिकार है। ईश्वर ने सब को स्वतंत्र उत्पन्न किया है और उसकी प्राकृतिक उदारताओं का लाभ सब लोग सम भाव से उठा सकते हैं। उसने किसी पुरुष विशेष के लिये कोई विशेष वस्तु नहीं बनाई, वरन् सब के लिये सब कुछ बनाया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने निम्न वर्णन में बहुत अच्छा दाक्षिण्य भाव दिखलाया है–

"निज निज रुचि के लेहु चुनि फूल सबै सुखसार।
इमि कहि कान्ह कदंब की हरषि हलाई डार।।"

दाक्षिण्य भाव अनेक प्रेमपाशों के समान सत्कार में होता है। यही दाक्षिण्य भाव ईश्वर में सबसे अच्छा देख पड़ता है।

आज कल कुछ लोगों ने स्वतन्त्रता का विचार बहुत करके राजनैतिक भाव में सीमाबद्ध कर रक्खा है, किन्तु ऐसे संकुचन की कोई आवश्यकता नहीं है। राजा के लिये भी दाक्षिण्य भाव आवश्यक है, और इस प्रकार राजनैतिक स्वतंत्रता भी स्वतंत्रता के विषय का एक अंग है–किन्तु है वह मात्र ही। हमारा अभीष्ट यहाँ स्वतंत्रता के अंग अथवा उपांग कथन का नहीं है, वरन् दार्शनिक सिद्धांतों के अनुसार हम इस पूर्ण विषय पर विचार करेंगे। सबको स्वतंत्र होने का सहज अधिकार अवश्य प्राप्त है, किन्तु संसार के सभी जीवों को मिलकर शांतिपूर्वक यहीं रहना है। इसलिये यदि प्रत्येक जीवधारी को मनमानी घरजानी का अधिकार मिले तो संसार थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाय। अतः प्रत्येक मनुष्य की शुद्ध स्वतंत्रता वही है जिससे किसी की उचित स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। इस नरलोक में मनुष्यों से इतर भी असंख्य जीवधारी रहते हैं, किन्तु मानसिक उन्नति में सब मनुष्यों से असंख्य गुण पीछे हैं। उनमें इतनी विचारशक्ति नहीं है कि अपनी एवं दूसरों की स्वतंत्रताओं को ध्यान देकर शुद्ध नियमों पर चलते हुए संसार की यथोचित उन्नति कर सके। वे या तो दास भाव से रहेंगे, अथवा शत्रु हो कर। स्वतंत्र रहने पर वे निष्कारण भी प्रहार कर बैठते हैं। इसलिये मनुष्यों ने उन्हें दास भाव में रखना उचित समझा है। उनके अधिकारों का इतना ही सत्कार अलम् है कि उनको कोई अनुचित दंड न दिया जाय।

मानुषीय स्वतंत्रता का संसार में विशेष सत्कार है, क्योंकि मनुष्य सब कुछ जानने और समझने के योग्य है। सबकी स्वतंत्रता अक्षत रूप से स्थिर रखने के विचार से मनुष्यों ने राजदंड सम्बन्धी अनेकानेक नियम, उपनियम बना रक्खे हैं। इनके अतिरिक्त सभ्यतापूर्वक रहने के लिये अनेकानेक अन्य नियमों की भी आवश्यकता है। जो नियम समाज के लिये बहुत ही उत्तम समझे गए हैं, वे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक

स्थापित हैं। उन्हीं को कानून कहते हैं। अनेकानेक देशों में लोगों की उन्नति, सभ्यता, एवं आवश्यकताओं के अनुसार ये नियम कुछ कुछ पृथक् भी होते हैं, किन्तु इन सबका प्रयोजन एक ही होता है, अर्थात् यह कि समस्त देशवासी आपस में शांतिपूर्वक रहकर दिनों दिन अधिकाधिक उन्नति करें। वास्तव में ये सब नियम व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बाधक हैं, किन्तु बिना इनके काम चल नहीं सकता, क्योंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उचित से अधिक सत्कार करने से सामाजिक स्वतंत्रता नष्ट होती है।

जो नियम सामाजिक स्वतंत्रता के रक्षणार्थ परमावश्यक हैं, उन्हें कानून अथवा राष्ट्रीय नियम कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक देश अपनी स्थिति, जलवायु, इतिहास आदि के अनुसार खाने पीने, उठने, बैठने, मिलने, जुलने, धर्म कर्म, रहन सहन, आदि के विषय में अनेकानेक नियमोपनियम बनाता है, जिन्हें सामाजिक नियम कह सकते हैं। समाज बहुधा राष्ट्रीय नियमों के प्रतिकूल चलने पर उतना क्रुद्ध नहीं होता जितना कि सामाजिक नियमों की प्रतिकूलता पर। राष्ट्रीय नियम राजा द्वारा घटाए बढ़ाए भी जा सकते हैं, किन्तु सामाजिक नियम बहुधा दशाब्दियों वरन् शताब्दियों तक जैसे के तैसे बने रहते हैं। कुछ तो सामाजिक नियम अच्छे होते हैं, किन्तु बहुधा वे अनावश्यक भी हैं। कोई मनुष्य गर्मी के महीने में यदि केवल एक महीन कुरता पहन कर समाज में सम्मिलित हो, तो प्राकृतिक नियमानुसार कोई हानि नहीं है, किन्तु फिर भी समाज ऐसे मनुष्य को असभ्य कह कर उसका उपहास अवश्य करेगा। यदि वह कहे कि मुझे ऐसा ही वस्त्र पसन्द है, तो भी समाज उसे पागल समझने से न हिचकेगा। वस्तुतः समाज व्यक्तित्व से वे जाने हुए बड़ी ही विकराल शत्रुता रखता है। ऐसे कपड़े पहनो, इस प्रकार से भोजन करो, यों पूजन उचित है, ऐसे विचार उपहासास्पद हैं, इत्यादि, इत्यादि असंख्य भाव समाज में प्रचलित हैं। उनसे प्रतिकूलता करनेवाला मनुष्य सामाजिक दंड का भागी होता है। बहुत से लोग सामाजिक विचारों का दासत्व सज्जनता का मुख्यांग समझते हैं। उन्हें अपने व्यक्तित्व से हाथ धोने में तनिक भी संकोच नहीं होता। वे नहीं समझते कि समय पर एक पशु भी अपनी स्वतंत्रता दिखलाए बिना नहीं रहता, किन्तु वे मनुष्य होकर भी बाबू समाजदास की उपाधि पाने के लिये लालायित हैं।

बहुत से लोग तो ऐसे मूर्ख होते हैं कि किसी के पहनाव ओढ़ाव, रहन सहन, आदि में छोटे से छोटा भी परिवर्त्तन देखकर बिना कुछ कहे उनसे रहा नहीं जाता। क्यों जनाब! आपने मोछें क्यों बनवा डालीं? अहा! अब तो आपने कल में बहुत बड़ी बड़ी रखवा लीं? ओहो यह दाढ़ी कितनी बड़ी बढ़ाते चले जाइएगा? जनाब! आप की चोटइया भी अजब है। कटावोगे भी इसे, इत्यादि, इत्यादि सैकड़ों अनावश्यक प्रश्न तथा कथन समाज में किए जाते हैं। असभ्य पुरुष ऐसे कथनों के साथ बहुत आक्षेप भी मिला देते हैं। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि स्वतंत्रता मनुष्य का न केवल सहज अधिकार है, वरन् उसकी मानसिक उन्नति के लिए भी परमावश्यक है। बिना स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं शुद्धाचरण के कोई जाति सबल नहीं हो सकती। प्रत्येक सुधी का कर्त्तव्य है कि औरों के अनावश्यक विचारों का लेशमात्र सत्कार किए बिना अपने शुद्ध संकल्पों पर अनुगमन करे। प्रबल स्वातंत्र्य भारी मानसिक बल का एक बहुत अच्छा साक्षी है। शंकर

स्वामी, महात्मा बुद्ध, महर्षि दयानन्द आदि ने उच्चाशयपूर्ण स्वतंत्रता ही को दिखला कर संसार को पवित्र एवं निष्पाप बनाया। यदि ये महाशय भी समाजदास होते, तो भारत की आज न जाने क्याा दशा होती। समाज के यह प्राकृतिक नियम है कि वह प्राय: प्रत्येक परिवर्तन के प्रतिकूल रहता है। तथापि सुधी पुरुष भली भांति जानते हैं कि स्थिरता सड़ना है।

यह निर्विवाद है कि प्रत्येक पुरुष बाबा नानक अथवा लूथर नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक मनुष्य सहस्रों वर्षों से स्थापित उचित नियमों का साधारणतया उल्लंघन कर सके, तो उच्छृंखलता का दोषी होकर समाज थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाय। फिर भी प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह विचारशक्ति का पूर्ण सदुपयोग करके उसकी दिनों दिन उन्नति करे एवं अशुद्धताओं से बचे। जो लोग अपनी विचारशक्ति से समुचित काम नहीं लेते, वे पशुओं से थोड़े ही अच्छे हैं। विचारशक्ति मनुष्य को व्यवहार ही के निमित्त दी गई है। जो लोग उसका आश्रय न लेकर बिना विचार दूसरों की अनुमतियों पर गमन करते हैं वे परावलंबी मूर्ख वृषभ के समान हो जाते हैं जो नाथ के सहारे किसी ओर जोता जा सकता है। नाथ का मुख जिधर करके उन्हें दो चाबुक मार दो बिचारे उसी ओर चल देंगे। उनको इस बात से प्रयोजन नहीं कि आपको कहाँ और कितनी दूर जाना है। जहाँ तक उनमें बल है वहाँ तक वे नाथ और कोड़े की आज्ञा मानते हुए चले जावेंगे, और जब थकित पराक्रम हो जावेंगे तब चाहे आध मील ही क्यों न चलना शेष हो, वे जुए को फेंक कर सड़क पर लेट जायँगे, और कोड़ों से काट दिए जाने पर भी न उठेंगे। इसीलिये कहा गया है कि जो लोग अपनी सम्मति स्थिर करने का साहस नहीं करते वे कायर हैं। जो सामर्थ्य होने पर भी सम्मति स्थिर नहीं करते वे आलसी हैं और जिनमें सम्मति स्थिर करने का सामर्थ्य नहीं है वे मूर्ख हैं। अत: प्रत्येक पूर्णावलम्बी पुरुष इन तीनों उपाधियों में से एक अवश्य पाता है।

देशाचार, कुलाचार, अभ्यास आदि की व्यक्तित्व से सहज शत्रुता है। जिन जातियों का भूतकालिक जीवन गरिमापूर्ण रहा है और जिनमें बड़े बड़े विचारवान व्यक्ति होते आए हैं उनका सामाजिक जीवन भी उच्च और सहिष्णुतापूर्ण होता है। संसार में सदैव देखा गया है कि बुराई का फल बुराई होती है और भलाई का भलाई। जो जातियाँ जितनी कम विदुषी एवं विचारश्रयी होती हैं, उनके समाजों में सहिष्णुता की मात्रा उतनी ही कम देख पड़ती है।

हमारे यहाँ बहुधा कहा जाता है कि प्राचीन प्रथा को कभी न छोड़ना चाहिए, क्योंकि क्या हमारे जिन पूर्व पुरुषों ने उनकी स्थापना की थी, वे मूर्ख थे। इस कथन की यदि तार्किक सिद्धान्तों से समालोचना की जाय, तो इसका कोई भी भाग युक्तिसंगत न ठहरेगा। यह कथन मान लेता है कि हमारे पूर्वपुरुषों ने हममें इस समय प्रचलित प्रत्येक रीति को स्वतंत्रता एवं दृढ़तापूर्वक विचारानंतर बिना किसी दबाब के उसे लाभदायिनी समझ कर सदा के लिये देश में स्थापित कर दिया। जब तक उपरोक्त सब बातें न मानी जावें तक तब किसी प्राचीन रीति को इस समय के लिये अग्राह्य मानने में पूर्वपुरुषों का अपमान नहीं है। फिर भी विचारपूर्वक देखने से प्रकट होगा कि उपरोक्त युक्तिसमुदाय में एक भी कथन ठीक नहीं है।

सदा के लिये कोई भी मनुष्य नियम नहीं बना सकता। समय समय पर समाज की आर्थिक, व्यापारिक, मानसिक, राजनैतिक आदि अवस्थाएँ जैसे जैसे बदलती जाती हैं, वैसे ही वैसे उसके लिये नियम-परिवर्तन की भी आवश्यकता होती है। फिर बहुत से आचार किसी समय किसी विशेष आपदा के कारण बनाये गये, तब उसी आचार को सत्कारित रखकर हानि सहते जाना अनावश्यक है। इसका उदाहरण हमारे यहां स्त्रियों को परदे में रखना है। एक यह भी विचारणीय बात है कि देशाचार को बहुधा कोई व्यक्तिविशेष स्थापित नहीं करता, वरन् समाज की तात्कालिक अवस्था के अनुसार वह सबके द्वारा आपसे आप स्थापित हो जाता है। देश-दशा के परिवर्तनों पर आचारों के भी परिवर्तन आवश्यक हैं, नहीं तो-

"तातस्ये कूपाऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।"

वाली कहावत चरितार्थ होगी। फिर कौन से पूर्वपुरुषों की बातें मानी जावें? वैदिक काल वालों की, अथवा स्मार्तकाल वालों की, या पौराणिक समय की या अंधकाराच्छन्न पिछले पांच सात सौ वर्षवालों की? हमारे सभी समय के सभी पूर्वपुरुषों ने उन्हीं बातों को अच्छा नहीं बतलाया है और न एक ही प्रकार की शिक्षा दी है। इसलिये सभी बातों और उन्नतियों के लिये कुछ आत्मनिर्भरता भी आवश्यक होती है।

सब बातों का तात्पर्य यह है कि संभावित को समाज दासत्व एवं उच्छृंखलता से बचते हुए अपने उचित विचारों पर अनुगमन करना चाहिए, और मानसिक बल को तिलांजलि देकर परावलंबन को ही सज्जनता का भूषण समझना उचित नहीं है। ❋❋❋

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220)	गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20)
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170)	श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20)
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)	सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20)
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)	आर्यों की दिनचर्या	मूल्य 12)

गतांक से आगे

विरजानन्द प्रकाश

लेखकः भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण

शूकर क्षेत्र का प्रथम निवास
(सं0 1880–1889)

वर्तमान सोरों नगर पहले गंगा के तट पर ही स्थित था। गंगा अकबर, जहांगीर, तुलसीदास आदि के समय में पुराने ही मार्ग में बहती थी। सोरों निवासी तुलसीदास गंगा की इस पुरानी धारा को ही संत् 1604 भाद्रपद वदी 3 शुक्रवार को आधी रात में पार करके दूसरे तट पर स्थित बदरिया ग्राम में अपने ससुराल को गए थे। महाकवि नन्ददास के पुत्र कृष्णदास ने यहीं पर स्थित गंगा की धारा की बाढ़ का वर्णन अपनी कविता में किया था।

अब कई सदियों से गंगा की धारा मार्ग–परिवर्तन कर 4 मील दूर हट गई है।

हम पहले कह चुके हैं कि दण्डी जी काशीगमन तथा हरिद्वार को निवृत्ति काल में दो बार सोरों ठहरे थे। इन दो समयों में एक बार या दो बार दण्डी जी का चातुर्मास्य सोरों में हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

सोरों में प्रज्ञाचक्षु जी का यह आगमन तीसरी बार था। आते ही प्रथम तो कुछ दिन मुख्य धारा पर गढ़ियाघाट में ठहरे। तदुपरान्त वे सोरों आ गये, और विश्रान्त कर, पूर्वोषित स्थान पर स्थिति की, अब अनेक छात्र उनसे पढ़ने लगे। बदरिया के अंगदराम बुद्धसेन आदि इस सोरों निवास के छात्र थे।

सोरों में विरजानन्द का चित्त अनेकविध ऊहापोहों से उद्विग्न रहता है। श्री दण्डी जी की चिन्ताएं किंविषयक थीं वह मीमांसनीय हैं। वे एक आदर्श निस्पृह संन्यासी थे। अतः किसी सांसारिक वस्तु की चिन्ता से उनका दूर का सम्बन्ध भी सम्भव नहीं था। उन का आध्यात्मिक जीवन न केवल स्वतः पुनीत प्रत्युत सम्पर्क में आने वालों को भी पवित्र बनाने वाला था, अतः तद्विषयक भी कोई चिन्ता, उद्वेग की सम्भावना नहीं है, तब फिर उनकी चिन्ता थी कि विषयक?

स्वामी विरजानन्द **"अं ब्रह्मस्मि"** की रट लगाने वाले, संसार से निर्लिप्त हो, अपने ही भोजन–छादन से परितुष्ट, स्वार्थी साधु न थे। वे अपनी देह के लिए तो कभी किसी के आगे हाथ पसारने का विचार भी न करते थे, तथापि अपने देशवासियों के कल्याण की कामना उनके हृदय में बड़ी प्रबल थी।

विरजानन्द ने महती क्रान्तियों का प्रत्यक्ष किया था। पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह का जन्म इनके दो वर्ष पश्चात् हुआ था और गंगा तट पर आ जाने पर भी पंजाब की सारी घटनाएँ उन्हें सुविदित थीं। यतिवर्य का जन्म सं0 1835 में हुआ। भारतवर्ष में अंग्रेजों का महान् उदय सारा–का–सारा विरजानन्द के जीवनकाल में ही हुआ था। सं0 1850 में जब वे हृषीकेश पहुंचे थे तो अंग्रेजों का उस प्रदेश से

सम्बन्ध न था, पर सं0 1860 में जब उन्हें काशी पहुंचे चार वर्ष व्यतीत हो गये थे तो अंग्रेजों का देहली पर अधिकार हो गया था।

सं0 1880 के लगभग दण्डी जी सोरों पहुंचे थे। इसके अनेक वर्ष पूर्व, जाटों और अंग्रेजों के प्रसिद्ध युद्ध हो चुके थे। गोरखों से युद्ध सं0 1873, दुर्दान्त पिण्डारियों का दमन तथा मराठा शक्ति का दीप-निर्वाण सं0 1873 से 1874 सब विरजानन्द की सुविज्ञात घटनायें थीं। सं0 1879 में अंग्रेजों ने प्रथम बार कोटे को हाड़ा राजपूतों की तलवारों की निर्मल धाराओं में स्नान किया था। किं बहुना, अंग्रेजों का सारा भारतवर्ष का महोत्कर्ष काल विरजानन्द का जीवनकाल था और विरजानन्द इस सबसे सुपरिचित थे।

मतमतान्तरों ने देश की क्या दुर्दशा कर डाली थी-इसका जानकार विरजानन्द के समान दूसरा न था। भारतीय विद्वान् ब्राह्मण, अपने साम्प्रदायिक क्रिया-कलापों से ही सन्तुष्ट रहते थे और उसी को परम धर्म समझते थे। पर विरजानन्द थे निखिलतंत्र-स्वतन्त्रमति, वे पर-प्रत्यय-नेय न थे। उनकी नकेल दूसरों के हाथ में न थी। वे अपनी सूक्ष्म धिषणा से तत्त्व-निर्णय में समर्थ थे।

देश की धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के जैसे अभिज्ञ विरजानन्द थे वैसा दूसरा न था। अपने देशवासियों के कल्याण की चिन्ता ही विरजानन्द की चिन्ता थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (जन्म नाम मूलशंकर) का प्रादुर्भाव टंकारा (सौराष्ट्र) में सं0 1871 फाल्गुन वदी 10 शनिवार, मूल नक्षत्र (12-2-1824) को हुआ था। इस समय श्री दण्डी जी सोरों में तपपरायण थे और देश की कल्याणचिन्ता से व्यथित थे।

दण्डी जी सोरों से एक बार कासगंज जाकर वहां कुछ काल रहे थे। इसी अवसर पर सम्भवतः राजा दिलसुखराम कुलश्रेष्ठ का परिचय उनसे हुआ। वे इनके पवित्र जीवन व विद्वत्ता से प्रभावित हो, इनके भक्त बन गये। इन कुलश्रेष्ठ महाशय की चर्चा आगे मथुरा यात्रा के अवसर पर आयेगी।

कासगंज से दण्डी जी महावट (7 कोस) जाकर वहां भी कुछ दिन रहे थे।

यह कासगंज तथा महावट का निवास प्रथम सोरों निवास काल से सम्बद्ध है, या द्वितीय से, यह हम अभी जान सके हैं।

अलवर-नृपति-समागम
(सं0 1889)

दण्डी जी कभी-कभी सोरों के विश्रान्त घाट से गंगा की धारा पर स्नानार्थ एकाकी ही चले जाते थे। सं0 1889 वैशाख मास कृष्ण पक्ष में एक बार वे इसी प्रकार गढ़ियाघाट पर स्नानार्थ गये थे और गंगा में खड़े होकर शंकराचार्य विरचित विष्णुस्तोत्र की आवृत्ति कर रहे थे। विरजानन्द यद्यपि पंजाबी थे और प्रायः पंजाबियों का संस्कृतोच्चारण उत्कृष्ट नहीं होता, प्रज्ञाचक्षु जी तो बारह वर्ष की अवस्था में ही घर से चल दिये और सम्पूर्ण शिक्षा दीक्षा सर्वश्रेष्ठ विद्वानों द्वारा गंगा तट पर ही सम्पन्न हुई थी। उन का

उच्चारण अति विशुद्ध था और उनका पाठ-प्रकार अपूर्व था।

अलवर-नरेशों में एक बड़े तेजस्वी, गुणानुरागी विद्वत्प्रिय विनयसिंह हुए हैं। उनका जन्म सं0 1865 आश्विन वदी एकादशी को हुआ था। और छः वर्ष की अवस्था में ही ये राजा (महाराव राजा सवाई विनयसिंह) बन गए थे। अपनी 23॥ वर्ष की अवस्था में ये गंगास्नान को शूकर क्षेत्र आए। विरजानन्द की विष्णु-स्तोत्र की आवृत्ति के समय वे भी गंगा तट पर उपस्थित थे। दण्डी जी की माधुरी-भरित ललित आवृत्ति ने विनयसिंह पर वशीकरण का कार्य किया। वे मुग्ध होकर, चित्र बन खड़े, उस आवृत्ति को सुनते रहे। विरजानन्द इस समय 53॥ वर्षीय महान् तपस्वी बिन्दु विजयी ब्रह्मचारी थे। योगासनों के तथा प्राणायाम के अभ्यासी थे। उनका मुखमण्डल ब्रह्मचर्य तथा तप से अति तेजस्वी तथा योगसाधना जनित कान्ति से कमनीय था। वे अप्रधृष्य होते हुए भी उपगम्य थे। विनयसिंह उनके व्यक्तित्व से अतीव प्रभावित हुए। जब तक दण्डी जी पाठ करते रहे महाराज उसमें खो से गए। वे अविचल भाव से तन्मय होकर सुनते रहे। जब दण्डी जी अपना आ कि दैवकृत्य समाप्त कर गंगा तट से चलने लगे तो उन्होंने समीप जाकर यथोचित अभिवादन-पूर्वक अपने साथ अलवर चलने की विनम्र प्रार्थना की। दण्डी जी ने उत्तर दिया "आप राजा हैं और मैं त्यागी। मेरा आपका क्या सम्बन्ध? मैं आपके साथ क्यों जाऊं?"

अलवरेन्द्र को इस निषेध से बहुत दुःख हुआ, पर वे भग्नोद्यम न हुए और उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिये उपाय खोजने लगे। लोगों ने उनको ज्ञात हो गया कि दण्डी जी विद्या-प्रसंग के बिना कथमपि कहीं न जायेंगे। अतः उन्होंने पुनः उनके स्थान पर उपस्थित हो अपना व्याकरणाध्ययन अभिलाषा प्रगट कर चलने की पुनः साग्रह प्रार्थना की।

यतीन्द्र तथा नरेन्द्र दोनों का संलाप दोनों बार संस्कृत में ही हुआ था, यतः विरजानन्द गृहत्याग के समय (12 वर्ष के वय) से केवल देव-वाणी ही बोलते थे और विनयसिंह जी थोड़ी-थोड़ी संस्कृत उससे पूर्व सीख चुके थे। अलवरेन्द्र ने तीन घण्टे नित्य नियम पूर्वक पढ़ने की प्रतिज्ञा की और कह दिया कि यदि मैं वचन भंग करूं तो आप अलवर से जा सकते हैं।

अलवर निवास
(सं0 1889-1892)

दण्डी जी अपने नये शिष्य के साथ अलवर पहुंचे। बदरिया निवासी शिष्य अंगदराम भी साथ गया। इस यात्रा में मथुरा तथा भरतपुर से भी श्री दण्डी जी का परिचय अनायास हो गया और कदाचित् मुरसान से भी।

विनयसिंह अति कुशाग्र बुद्धि तथा तेजस्वी थे। ये महान् विद्याप्रेमी तथा विद्वत्सेवी थे। उन्होंने न केवल स्वयं परिश्रम-पूर्वक संस्कृत पढ़ी थी, अपितु रानियों को भी पढ़ाई थी। उनकी सभा में पं0 रूपनारायण, शालिग्राम, शिवप्रसाद तथा लक्ष्मण शास्त्री नामक उच्च्व विद्वान् थे। उसमें खैराबाद (पंजाब) निवासी फजलहक नामक सुशिक्षित अरबी फारसी का विद्वान् भी था। उसे 300) मासिक वेतन मिलता

था। उनके संगीताचार्य, चित्रकार आदि सब उच्चकोटि के कलाकार थे। विनयसिंह का बनाया सरस्वती भण्डारागार (पुस्तकालय), दुर्लभ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का महार्ह संग्रह है। इसमें संस्कृत के साथ अरबी फारसी के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का भी प्रचुरता से संग्रह किया गया था। कुरानशरीफ की एक पुस्तक पर 50 सहस्र रुपये व्यय हुए थे। गुलिस्तां 2 लाख रुपये में लिखवाई गई थीं अलवर का यह प्रसिद्ध सरस्वती-भण्डारागार विनयसिंह के विद्यानुराग को शतमुख से उद्घोषित करता है। विनयसिंह के महान् प्रयत्नों ने अलवर को भी कुछ समय प्रसिद्ध विदुष्मती नगरी बना दिया था। काशी के प्रसिद्ध पण्डित स्वामी राममिश्र भी अलवर की उपज थे।

अलवर के प्रभूत उच्च पण्डितों ने भारत के विविध प्रान्तों में प्रचुर सम्मान व धन पाया तथा अलवर को कीर्तिमती बनाया। अलवर का राजप्रसाद कुछ समय तक परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी तथा सरस्वती का संगम स्थल बन गया था।

विनयसिंह जैसे विद्यानुरागी तथा विद्योत्साही थे, वे वैसे ही शासनकार्य में कठोरतर न्याय के पक्षपाती थे। कभी-कभी वे कुपित हो यमराज सा भयंकर रूप धारण करते थे और एक ही आज्ञा से एकाधिक शिर भी धड़ से पृथक् करा देते थे।

ऐसे आपाततः विरोधी गुणों के संगम स्थल विद्वत्सेवी विनयसिंह विद्या, प्रतिभा, पवित्रता, त्याग तथा तेजस्विता के राशि विरजानन्द के सम्पर्क में आकर उन्हें अपनी राजधानी में लाये बिना सन्तोष लाभ न कर सकते थे। वे विविध अनुनय-विनय तथा नियमित अध्ययन की प्रतिज्ञा कर, उन्हें साथ लाकर सन्तोषामृत तृप्त हुए। नवयुवक विनयसिंह के आगामी विकास में दण्डी जी का बड़ा भाग था।

यतिभूषण विरजानन्द अलवर पुरन्दर के साथ सं0 1889 के वैशाख में अलवर आ पहुंचे। कटरा में, जगन्नाथ मन्दिर के पास एक बड़ा गृह उनके निवास के लिये नियत था। किसी-किसी ने उनका मुन्शी बाग में निवास बताया था, पर श्री देवेन्द्रनाथ इसे ठीक नहीं मानते। कदाचित् कभी कुछ थोड़े दिन वहां वास रहा हो। भोजन-सामग्री राजभण्डार से आती थी। मित्रसेन नामक ब्राह्मण पाचक नियत हुआ। स्वेच्छानुरूप क्रयार्थ एक रुपया प्रतिराज्य से भेंट निश्चित हुई। वस्त्र-परिधान का अलवर-नरेश सदा ध्यान रखते ही होंगे। महाराज की जन्मतिथि तथा अन्य विशिष्ट पर्वादि अवसरों पर विशेष उपहार प्रस्तुत अवश्य होते रहे होंगे।

अलवरेन्द्र के पढ़ने का समय व स्थान निश्चित हो गया और श्री दण्डी जी निश्चित समय पर राजकीय सवारी में राजप्रासाद में जाकर उन्हें पढ़ाने लगे। प्रधान मंत्री श्री पं0 रूपनारायण के सम्पर्क से अलवर महीमहेन्द्र की संस्कृत में अल्पगति तथा स्वल्प सम्भाषण क्षमता तो पूर्व से ही थी। अब वे दण्डी से व्याकरण पढ़ने लगे। यतिमूर्धन्य ने उन्हें वरदराजकृत लघुसिद्धान्त-कौमुदी पढ़ाना प्रारम्भ किया। ततः अलवरेन्द्र की इच्छानुरूप एक नया ग्रन्थ **"शब्द-बोध"** बनाकर उन्हें पढ़ाया। दण्डी जी जैसे उत्कृष्ट पण्डित थे। वैसे ही अध्यापन कला-प्रवीण भी थे। वे कहा भी करते थे-**"वक्तुरेव हि तज्जाडयं श्रोता यत्र न बुध्यते"** अर्थात् वक्ता यदि श्रोता को अपना अभिप्राय हृदयंगम न करा सके तो यह वक्ता की ही जड़ता है।

-(शेष अगले अंक में)

यज्ञ, देवता और ऋषि आदि

लेखकःस्वामी सत्यानन्द महाराज

श्रीस्वामी जी महाराज यज्ञादि सुकर्मों में बड़ी श्रद्धा रखते थे। इनका प्रचार करने में वे सदा तत्पर रहते थे। इनका प्रचार करने में वे सदा तत्पर रहते थे। यज्ञ के विषय में उनका उपदेश यह है–''यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं–देव–पूजा, संगति–करण और दान। देव शब्द पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इसके अर्थ प्रकाशक–स्वरूप, द्योतक प्रकाशक के हैं। वेद मन्त्रों को भी देव कहते हैं, क्योंकि इनसे विद्याओं का प्रकाश होता है। देव शब्द का अर्थ परमेश्वर भी है। परमात्मा ही से सूर्यादि प्रकाशक पदार्थ प्रकट हुए हैं। ज्ञानी जन भी अनेक गुणों और विद्याओं के प्रकाशक होते हैं। इसलिये देव शब्द विद्वानों के लिये भी प्रयुक्त होता है।''

यज्ञ में परमेश्वर और मन्त्रों ही को देव माना है। वैसे तो मुख्य देव एक ईश्वर ही है। तेतीस देदताओं का जहाँ वर्णन है वहाँ इनसे तात्पर्य है–अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य द्यौः, चन्द्रमा और नक्षत्र ये आठ वसु हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और ग्यारहवाँ जीवात्मा, ये ग्यारह रुद्र हैं, बारह आदित्य, इन्द्र अर्थात् विद्युत और प्रजापति अर्थात् यज्ञ–ये 33 देवता हैं।''

महाराज के मत में देव शब्द के अर्थ माता पितादि भी हैं। उनका आदर सत्कार, पूजन अर्चन देव–पूजा है। इस पर वे कहते हैं–''देवता दो प्रकार के हैं–एक मूर्तिमान् और दूसरे अमूर्तिमान्। माता–पिता, आचार्य और अतिथि ये चार मूर्तिमान देवता हैं। पाँचवाँ देवता परब्रह्म परमेश्वर है और वह अमूर्तिमान् है। पृथ्वी आदि जड़ वस्तुओं में देवपन केवल व्यवहार में–कहने और वर्ताव में–माना जाता है। माता, पिता, आचार्य और अतिथि आदिकों में देव शब्द का उपयोग व्यवहार और परमार्थ का प्रकाश करने में भी होता है। मन और इन्द्रियों के लिये भी देव शब्द आया है। वहाँ इस शब्द का उपयोग व्यवहार और परमार्थ दोनों में होता है। पर उपासनीय केवल परमात्मदेव ही हैं।''

मूर्तिमान् देवताओं का वर्णन करते हुए महाराज फिर उपदेश देते हैं–

''प्रथम तो पूजनीया मूर्तिमती देवता माता है। सन्तानों को चाहिए कि माता की सेवा–शुश्रुषा तन–मन–धन से करें। उसे सब प्रकार प्रसन्न रक्खें। उसका अपमान कदापि न करें। दूसरा देव पिता है। उसका भी पूजन माता के समान होना चाहिए। तीसरा देव विद्या का दाता आचार्य है। तन–मन–धन से उसकी सेवा करना शिष्य का कर्त्तव्य है। चौथा देव वह अतिथि है जो विद्वान्, धार्मिक, सरल और सबका हितकारी हो, जो सर्वत्र भ्रमण करके सत्योपदेश द्वारा सबको सुख देने का प्रयत्न करे। ऐसे सन्तों और सज्जनों की सेवा करना पुण्योपार्जन का साधन है। पांचवाँ देव पत्नी के लिए पति है और पति के लिये

पत्नी भी देवता है। ये पांच मूर्तिमान् देवता हैं जिनके कारण मनुष्य का पालन-पोषण होता है, उससे उत्तम आचार-विचार की शिक्षा मिलती है, सदुपदेश और विद्या की प्राप्ति होती है। परमात्मा को प्राप्त करने की यही पांच सीढ़ियाँ हैं।

'' यज्ञ शब्द का दूसरा अर्थ संगति-करण है, जिसका तात्पर्य है सन्तों, सज्जनों और गुणी-ज्ञानी जनों का सत्संग करना, उनके वचनों और विचारों से लाभ उठाना, दान-दक्षिणा से उनकी सेवा-भक्ति करना।''

श्री स्वामी जी नाम मात्र के साधु-सन्तों और गुरुजनों के संग का उपदेश नहीं देते थे। उनके विचार में तो साधु-सन्त, ब्राह्मण और गुरु आदि व्यक्तियों में ज्ञान, ध्यान, जप-तप और परोपकार आदि शुभ कर्मों का विशेष होना परमावश्यक है। इनके बिना कोरे नाम किसी काम के नहीं और नितान्त निरर्थक हैं। इस विषय में स्वामी जी का उपदेश यह है-

''सज्जन, विद्वान्, धार्मिक और परोपकारी जनों को सन्त कहते हैं। साधु उनको कहा जाता है जो जन धर्मयुक्त और उत्तम कर्म करें, सदा परोपकार-परायण रहें, विद्वान् और गुणवान हों, सत्योपदेश से मनुष्यों का हित-साधन करें। जब ऐसे सन्त जन सत्योपदेश करते हुए विचरण करते हैं, तभी अन्धकार की परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चला करती है।''

स्वामी जी शान्त दान्त जनों को साधु-सन्त कहा करते थे। क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर में फंसना सन्त-धर्म के विरुद्ध समझते थे।

स्वामी जी ने संन्यासी सन्तों का कर्त्तव्य वर्णन करते हुए कहा है-''तीन एषणाओं को त्यागकर निष्पक्ष भाव से वैदिक धर्म का उपदेश करना संन्यासियों का मुख्य कर्म है। जैसे गृहस्थ लोग अपने व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, संन्यासी सन्त परोपकार-कर्म में उनसे भी अधिक परिश्रमी करें, तभी आश्रमों की उन्नति हो सकती है। नहीं तो व्यर्थ पर्यटन में काल बिताना, दण्ड-कमण्डलु उठाये स्थान-स्थान में चक्कर लगाते फिरना, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा और दुष्कर्मों मतें फँसे रहना, और वेश मात्र से अपने आपको कृतकृत्य मान लेना जीवन को व्यर्थ गँवा देना है, जगत् में निष्फल निवास करना है।''

स्वामी जी महाराज यह मानते थे कि संन्यासी सन्तों के लिये निस्पृही, त्यागी, जितेन्द्रिय और भगवद्भक्त होना परम आवश्यक है। उन्होंने संन्यासी धर्म का उपदेश देते हुए श्री सहजानन्द जी से कहा था कि संन्यास लेकर वासना-जाल को काट देना चाहिए। इन्द्रियदमन करना अति उचित है। संन्यासी सन्तों को चाहिए कि प्राणायाम के पानी से अपने मन की मैल धो डालें, प्रणव पवित्र में चित्त को लगावें, जप आराधना के साधन से अपनी आत्मा को उन्नत करें, सदा लोक-हित के कामों में भाग लें, सर्वत्र धर्मोपदेश ही का डंका बजावें, और पक्षपात तथा अन्याय-अनीति में न फँसें।

श्रीस्वामी जी साधुओं और ब्राह्मणों के विषय में यह भाव रखते थे-''ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म , स्वभाव से होते हैं। परोपकार उनका परम कर्म है। ब्राह्मण और साधु के नाम से उत्तम

जनों ही का ग्रहण करना उचित है। यदि कोई उत्तम साधु ब्राह्मण न होता तो यवनों और ईसाइयों को आक्रमणों से वेदादि सच्चे शास्त्र को कौन बचाता? इनका पठन-पाठन कौन रख सकता? आज तक आर्यों में शास्त्रों की प्रेम-भक्ति को बनाये रखने वाले ब्राह्मण और साधु-सन्त ही हैं।''

महर्षि गुरु-पदवी के अधिकारी भी गुणी जनों ही को मानते थे। उनकी सम्मति में कान में फूंक लगाने वाले, डेरेदार, मठाधीश और आडम्बरी महन्त गुरु नहीं हैं। गुरु तो वे कहे जा सकते हैं जो शिष्य के अन्तःकरण से अज्ञान की कलिमा का मार्जन कर डालें, उसे आचार-विचार सिखाकर धार्मिक जीवन प्रदान करें, और उसके मनोमस्तक में विकास की ज्योति चमका दें। ऐसे गुरुजन कौन हैं इसस पर महाराज के वाक्य ये हैं-''गुरु तो माता पिता, आचार्य और अतिथि हैं। उन्हीं से विद्या सीखनी और उन्हीं की सेवा करनी उचित है।''

श्री स्वामी जी ने यज्ञ का तीसरा अर्थ दान बताया है। उन्होंने कहा है-''यज्ञ का तीसरा अर्थ दान है। सब दानों में ज्ञान का दान अविनाशी और प्रधान है। अन्न, वस्त्र आदि के दान विद्या-दान की बराबरी तो नहीं कर सकते, परन्तु इसके सहायक अवश्य हैं। वे भी दान कहे जाते हैं।''

दान देने वाले नर-नारियों के कितने प्रकार हैं, इस पर महाराज के ये वाक्य हैं-

''दाता तीन प्रकार के होते हैं-उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। जो दाता देश काल और पात्र को देखकर सत्य विद्या की वृद्धि, सच्चे धर्म की उन्नति और परोपकार के कार्यों के लिए दान दे, वह उत्तम दाता कहा जाता है। जो कीर्ति और स्वार्थ सिद्धि के लिये दान करे, वह मध्यम कोटि का दाता होता है। निकृष्ट कोटि का दाता वह है जो देते समय देश, काल और पात्र का कुछ भी विचार न करे और अपना पराया हित किंचिमात्र भी सिद्ध न कर सके, अन्धाधुन्ध दान दे, अपमान और तिरस्कार से दे, भाँड़ धूर्त्त को देकर तथा कुव्यसनों में लगा कर धन खोये।''

श्री स्वामी जी ऐसे जनों को दान देने के लिये कहते थे जो सुपात्र हों, दीन हों, और असमर्थ हों। कुपात्र को अन्नादि देने से लाभ के स्थान में आलस्य और प्रमाद की वृद्धि से हानि ही होती है। सुपात्र के गुण-कर्म वर्णन करते हुए उन्होंने यह उपदेश दिया है-''जो जन ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेद-पाठी, सुशील, सत्यवादी, पुरुषार्थी और परोपकार-परायण हैं, वे सब सुपात्र हैं। उदार जन, विद्या और धर्म की उन्नति करने वाले, प्रशान्त, निन्दा स्तुति और हर्ष-शोक को समान समझने वाले पवित्र पात्र हैं वे जन भी दान के पात्र हैं, जो निर्भय और उत्साही हैं जो योगी ज्ञानी और ईश्वराज्ञा का पालन करने वाले हैं, जो न्याय नीति-युक्त और रीति-भांति पर चलते हैं। जो उपदेशक सत्योपदेश देते हुए विचरण करते हैं, जो वेदशास्त्र का ज्ञान-दान देते और जिज्ञासुओं के सन्देह मिटाते हैं, वे भी सच्चे सुपात्र हैं। जो सज्जन अपने समान सबका सुख-दुःख और हानि लाभ समझते हैं, हठ-दुराग्रह से दूर रहते हैं, मान को विष समान मानते हैं, धर्म पर चलते हुए अपमान को अमृत तुल्य जानते हैं, यथा लाभ ही में सन्तोष करते हैं और किसी की निन्दा चुगली करने के कीचड़ को नहीं छूते, वे सुपात्र समझे जाते हैं। जो वीतराग, सत्यमानी,

सत्यवादी, सत्यकारी, सरल-स्वभाव, गम्भीराशय और सत्पुरुष हैं, वे भी उचित पात्र हैं। जो सज्जन जनहित में रात-दिन लगे रहते हैं, पराये सुख के लिये तैयार रहते हैं, जो धार्मिक और सदाचारी है वे सब सुपात्र समझे जाने चाहिये। परन्तु दुर्भिक्ष में, दुःख में, दुर्दिन की पीड़ा में आपत्काल और व्याधि-विपत्तियों में, सभी जन अन्न-जल, औषध और वस्त्रादि के अधिकारी हुआ करते हैं। ऐसे संकट के समय में पात्रापात्र का विचार करना उचित नहीं है।''

महाराज उन महापुरुषों को ऋषि मानते थे जो योगिजन और आत्म-दर्शी हों जो उसी का वर्णन करें जिसका भाव उन्होंने साक्षात् कर लिया हो, और जो यथार्थ वक्ता और आप्त हों। जो महात्मा वेद-मन्त्रों के भाव का अनुभव करके जनता की कल्याण-कामना के लिये उसका उपदेश करें-उनका प्रकाश करें-वे ऋषि कोटि में गिने जाते हैं। तत्वदर्शियों को भी ऋषि कहा जाता है ऐसे सन्तजनों के बनाये हुए ग्रन्थों को, दार्शनिक शास्त्रों को, स्मृति पुस्तकों को और आत्म-तत्व निरूपण के वाक्यों तथा गीतों के संग्रह को आर्ष ग्रंथ कहा जाता है। ऐसे आर्ष ग्रन्थ भी धर्म-तत्व के बोधक होने से धर्म में प्रमाण माने जाते हैं। ❀❀❀

महापुरुषों की जयन्ती

गुरू गोविन्दसिंह	5 जनवरी
भीष्म पितामह	10 जनवरी
स्वामी विवेकानन्द	12 जनवरी
महादेव गोविन्द रानाडे	16 जनवरी
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	23 जनवरी
लाला लाजपतराय	28 जनवरी
विश्वकर्मा	29 जनवरी
गुरू रविदास	31 जनवरी

12 जनवरी	राष्ट्रीय युवा दिवस
13 जनवरी	लोहड़ी-पंजाब
14 जनवरी	मकर संक्रान्ति
15 जनवरी	थल सेना दिवस
22 जनवरी	बसन्त पंचमी
24 जनवरी	उत्तर प्रदेश स्थापना दिवस
26 जनवरी	गणतंत्र दिवस

महापुरुषों की पुण्यतिथि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	6 जनवरी
सदाशिवराव अमीन	7 जनवरी
लालबहादुर शास्त्री	11 जनवरी
मास्टर दा सूर्यसेन	12 जनवरी
सिपाही बहादुर	13 जनवरी
महादेव गोविन्द रानाडे	16 जनवरी
जे0 कृष्णमूर्ति	17 जनवरी
खान अब्दुल गफ्फार	20 जनवरी
वीर हेमू कालानी	21 जनवरी
महात्मा गांधी	30 जनवरी

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

विचारवान् साहसी पुरुषों के द्वारा उन्नति के मार्ग का खुलना

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

इस प्रकार जबसे हिन्दुस्तान के लोगों ने वस्तु–स्वभाव और कार्य कारण के अटल नियम को भुला दिया और देवी–देवताओं की अलौकिक शक्तियों तथा जंत्रों–मंत्रों के असम्भव–प्रभावों पर भरोसा करके अपने कार्य की सिद्धि के लिए कारणों का जुटाना छोड़ दिया, अर्थात् पुरुषार्थहीन होकर कोयल की तरह 'तूही तूही' पुकारने लगे, तबसे उनके सभी कार्य मटियामेट हो गये और तभी से उनको उन पड़ौस के देशों के मुसलमानों ने अपना गुलाम बना लिया जिनको ये अपने झूठे घमंड में आकर म्लेच्छ कहा करते थे। उन मुसलमानों ने इनके मन्दिरों को तोड़कर और मूर्त्तियों को फोड़कर उस जगह अपनी मस्जिदें बनवाईं और नित्य सवा लाख जनेऊ तोड़ने की आज्ञा जारी कर दी। उस समय न तो इनके असंभव को संभव कर देने वाले अनन्त शक्तिसम्पन्न देवताओं से कुछ हो सका और न वे सब भगत पुजारी, साधु संन्यासी और सन्त महन्त ही कुछ कर सके जिनका पहले भारी रौब था, जिनके पेशाब में दिया जलता था, जो आकाशगामी कला के द्वारा पलभर में कहीं के कहीं पहुँच जाते थे, कुछ से कुछ कर दिखलाते थे, जिनके प्रभाव से समुद्र सूख जाते थे जो अपनी एक दृष्टिमात्र से सूर्य और चन्द्रमा की चाल को भी बदल देते थे, और जिनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए स्वयं त्रिलोकीनाथ भी दासों की तरह उनके द्वार पर खड़े रहते थे। इसी प्रकार बड़े–बड़े जादू और जंत्र–मंत्र भी जिनके द्वारा विषधर सर्प वश में किये जाते थे, अनेक अघट कार्य क्षणभर में कर दिखलाये जाते थे, भूत–प्रेतादि काबू में किये जाते थे और मूठ मारकर दूर बैठे हुए बैरी को मार सकते थे। मुसलमानों के जुल्म के सामने कुछ भी न सके। अन्त में यह हुआ कि जिनकी नाक पर कभी मक्खी भी नहीं बैठने पाती थी और जो किसी म्लेच्छ की परछाईं पड़ जाने से तीन बार स्नान करते थे, वे ही ध्वजाधारी राजपूत अपनी कन्याओं को मुसलमानों को समर्पित करके उनसे मिले और उनके दास बनकर अन्य राजपूत भाइयों से लड़कर हिन्दू राज्यों को विध्वंस करके इस पुण्यभूमि की कीर्त्ति अमर कर गये।

यह सब कुछ हुआ, परन्तु फिर भी वे सब देवी देवता अपने पुजारियों की कृपा से अपनी महान् अलौकिक शक्तियों के साथ ज्यों के त्यों पूजनीय बने रहे। भक्त लोग उनको अपनी पहली ही श्रद्धा के साथ पूजते और अपने सब कार्य उन्हीं की कृपा के भरोसे रखते रहे। इसके सिवा अनेक जोगी जंगम, साधु संत भी नाना प्रकार के रूप धारण करके डेढ़ गज का चिमटा खड़काते हुए तथा लाल–लाल आँखें करके अपनी अद्भुत शक्तियों की बानगी दिखाते हुए घर–घर घूमते रहे और इन्हीं की अप्राकृतिक शक्तियों के द्वारा गृहस्थों के सारे कार्य सिद्ध होने की कोशिशें होती रहीं, साथ ही जादू टोने वालों के जंत्र–

मंत्र भी उसी प्रकार काम करते रहे और वे भी असम्भव को सम्भव करके दिखलाते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि इस देश के लोग और भी नीचे गिर गये और इनकी देखादेखी मुसलसमान भी पुरुषार्थहीन और विषयासक्त होकर अपने पीरों की कबरें पूजने में लग गये, या अपने फकीरों के मुरीद होकर उनकी दुआ के भरोसे बिलकुल बेफिकर हो गये। यही नहीं; वे जंत्रों मंत्रों पर भी श्रद्धा करके और ताबीजों का एक लम्बा कंठा गले में डालकर निश्चिन्त हो रहे और हिन्दुओं के ही समान भाग्यवादी बनकर अपना सर्वस्व खो बैठे। अन्त में वे भी परम पुरुषार्थी अंग्रेजों को अपना सब राज पाट सौंपकर अपने हिन्दू भाइयों की श्रेणी में आ गये और अकर्मण्य बनकर जरा जरासी बातों और एक एक सुई के लिए विदेशियों के मोहताज बन गये।

इस सारे कथन का सार यह है कि वस्तुस्वभाव और कार्य कारण सम्बन्ध को बतलाने वाले साहसी पुरुषों के प्रयत्न से ही यह मानव जाति उन्नति की ओर पग बढ़ाती है, परन्तु उनका उपदेश प्रचलित देवी-देवताओं के विरुद्ध होने के कारण वे उन्हीं देवी-देवताओं और जंत्र-मंत्रों के मानने वाले लोगों के हाथ से धक्के खाते हैं और मारे जाते हैं कि जिनकी भलाई का वे बीड़ा उठाते हैं। इसके विपरीत यह मानवजाति उन धर्मगुरुओं, पुजारियों और भगतों की खूब पूजा करती है-उनके आगे मस्तक झुकाती हैं जिनके कारण वह पशु श्रेणी में गिनी जाती है और देवी-देवताओं तथा जंत्रों मंत्रों की अपार शक्ति बतलाकर मनुष्यों को उन्हीं पर भरोसा करने का उपदेश देते हैं और उन्हें विचारशून्य तथा पुरुषार्थहीन बनाकर नीचे गिराते हैं। ❀❀❀

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F SC Code- IOB A 0001441

***'सत्य प्रकाशन'** खाता संख्या- 144101000002341*

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

कायाकल्प–

1. निर्गुण्डीमूल चूर्ण आधा किलो, मधु 1 किलो दोनों को खरल में घोटें। जब एकजान हो जाएँ तब एक हांडी में भरकर उसका मुँह कपड़-मिट्टी करके बन्द कर दें और धान के मध्य में रख दें। एक मास के बाद निकालकर प्रतिदिन 10 ग्राम दवा का सेवन करें।

इसके सेवन से शरीर का रंग सोने के समान हो जाता है, दृष्टि गृध्र के समान हो जाती है, सब रोग दूर हो जाते हैं। बुढ़ापा आक्रमण नहीं करता। बाल काले रहते हैं।

2. पुनर्नवा (सफेद पुष्पवाला) की 20 ग्राम जड़ को दूध में पीसकर एक वर्ष तक सेवन करने से वृध्द पुरुष भी जवान हो जाता है।

3. भृंगराज सूखा, आँवला सूखा, काले तिल और मिश्री, चारों समभाग लेकर चूर्ण कर लें। एक वर्ष तक नियमित रूप से सेवन करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें।

4. प्रतिदिन 2–3 छोटी हरड़ चूसने से पेट के सब विकार दूर हो जाते हैं, दस्त खुलकर आता है, गैस–ट्रबल दूर होती है, भूख खूब लगने लगती है, पाचनशक्ति बढ़ जाती है, रक्त शुद्ध होता है, आँखों के लिए भी लाभदायक है। निरन्तर सेवन करने से चश्मे का नम्बर भी घट जाता है। इसकी प्रशंसा में ठीक ही कहा है–

यस्य माता गृहे नास्ति तस्य माता हरीतकी।
कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।

जिसके घर में माताा नहीं है उसकी माता हरड़ है। माता कभी क्रुद्ध हो जाती है परन्तु पेट में गई हुई हरड़ कभी कुपित नहीं होती। और भी–

हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने दिने।
मोक्षारोग्यतपः कामश्चिन्तयेद् भक्षयेज्जपेत्।।

मोक्ष, आरोग्य और तप की इच्छा करनेवाले को प्रतिदिन परमात्मा, हरड़ और गायत्री का क्रम से चिन्तन, सेवन और जप करना चाहिए।

काँच निकलना–

1. इमली के बीजों की गिरी का चूर्ण 4 ग्राम से 10 ग्राम तक मक्खन के साथ मिलाकर रोगी को खिलाएँ।

एक–दो मास सेवन करने से रोग दूर हो जाएगा।

2. शौच जाने के पश्चात् रोगी अपने ही मूत्र से गुदा को धोए। निरन्तर कुछ समय ऐसा करने से काँच निकलना बन्द हो जाएगा।

3. बबूल की फली, ताम्बूल, धाय के फूल–इन सबको बराबर लेकर औटाएँ। ठण्डा हाने पर इस पानी से काँच को धोएँ अथवा रोगी को इस पानी में बैठाएँ। 2–3 सप्ताह ऐसा करने से काँच निकलना बन्द हो जाता है।

काँटा गलानेवाली बूटी–

धतूरे के पत्ते को गुड़ में लपेटकर खिला देने से शरीर के किसी भी अंग में लगा हुआ काँटा, चाहे कैसा ही कठोर हो, पानी की तरह बह जाता है।

काली खाँसी–

1. कंजा, बड़ी पीपल, छोटी पीपल, बड़ी हरड़–चारों 1–1 नग। नमक 8 ग्रेन। बाँस के पत्ते 2॥। सबको कूटकर 125 ग्राम पानी में मिट्टी के बर्तन में पकाएँ। चौथाई पानी रहने पर उतार लें तथा छानकर मिट्टी के बर्तन में रख लें।

3–3 ग्राम दिन में चार बार दें। काली खाँसी की शर्तिया दवा है।

2. शुद्ध किया हुआ नारियल का तेल इस रोग में अद्‌भुत लाभ दिखाता है। 1 वर्ष के बच्चे को 3–3 ग्राम दिन में तीन बार पिला दें। बहुत शीघ्र रोग से छुटकारा मिल जाएगा।

3. केले के सूखे पत्तों को जलाकर राख कर लें। बच्चों के लिए 1 ग्रेन और बड़ों के लिए 4 ग्राम राख शहद में मिलाकर दिन में तीन बार कुछ दिन तक चटाएँ।

4. भटकटैया (पसर कटेली, जिसमें बैंगनी फूल लगते हैं। फूलों के बीज में केशर जैसे पतले–पतले रेशे होते हैं) के रेशों को इकट्‌ठा करके छाया में सुखा लीजिए। इसकी मात्रा 3 से 4 ग्रेन है। 3 ग्राम उत्तम मधु में मिलाकर चटाएँ। छोटे बच्चों को आधा से 1 ग्रेन तक दें। दिन में 5–7 बार चटाएँ। पहले ही दिन में लाभ होगा।

5. भुनी हुई फिटकरी 2 ग्रेन (1 रत्ती), चीनी 2 ग्रेन, दोनों को मिलाकर दिन में दो बार खिलाएँ। पाँच दिन में काली खाँसी ठीक हो जाती है। बड़ों को दुगुनी मात्रा दें।

कुकरे

1. फिटकरी, नौशादर, कलमी शोरा, नीला थोथा–प्रत्येक 25 ग्राम।

इन सबकी खील बनाकर बारीक पीस लें। यह 4 ग्राम दवा लेकर इसमें 6 ग्राम भीमसेनी कपूर मिला लें। फिर इन दोनों को 25 ग्राम मधु या ग्लिसरीन में मिलाकर लगाने से कुकरे सदा के लिए जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं।

2. फिटकरी का फूला करके बारीक पीस लें और स्वच्छ रूई के फाहे में थोड़ी–सी रखकर बकरी

के दूध की धार से उस फाहे को तर करके आँखों पर रखके पट्टी बाँध दें। एक सप्ताह ऐसा करने से आँखों के कुकरे और पड़वाल अवश्य ही नष्ट हो जाएँगे।

कुष्ठ

1. भाँगरा और बकुची का चूर्ण 6 ग्राम पानी के साथ फँकाने से और इन दोनों को 21 दिन तक पीसकर लेप करने से कुष्ठ रोग जड़ से नष्ट हो जाता है।

नोट– ओषधि-सेवन-काल में नमक का प्रयोग न करें।

2. विजयसार की लकड़ी 8 ग्राम का काढ़ा पीने से कुष्ठ नहीं रह जाता।

3. सरपुंखा के पत्तों का रस 10 ग्राम नियमपूर्वक पीने से चर्म-रोग दूर होता है।

4. नीम के पत्तों को जल में उबालकर इस जल से स्नान करना चाहिए और गाय के दूध में 3 ग्राम पत्तों को पीसकर इसका 2-3 मास तक सेवन करना चाहिए। इससे रक्तपित्तऔर कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। कुष्ठ रोगी को रात्रि में नीम की छाया के नीचे सोना चाहिए।

5. 40 ग्राम गोमूत्र में 4 बड़ी हरड़ का चूर्ण मिलाकर सेवन करें तो कुष्ठ निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

नोट–प्रयोग-काल में नमक का सेवन न करें। हल्का आहार लें।

क्र=उल्टी

25 ग्राम गेरू के टुकड़े लेकर आग पर गर्म करें, फिर इसे 250 ग्राम पानी में बुझाएँ। दो-तीन बार ऐसा करके यह पानी पिलाएँ। कैसी उल्टियाँ आ रही हों बन्द हो जाएँगी।

क्षय-नाशक

1. निम्नलिखित तीनों चीजें पका लें और प्रातःसायं पिला दें- बकरी का दूध 250 ग्राम, नारियल कसा हुआ 10 ग्राम, लहसुन पिसा हुआ 6 ग्राम सबकी एक मात्रा।

2. काली स्वस्थ एवं दुधारू गाय का मूत्र दिन में दस बार 10-10 या 20-20 ग्राम पिलाएँ। यह प्रयोग 21 दिन तक करें।

3. नागबाला का चूर्ण 4 ग्राम, घी 3 ग्राम और शहद 6 ग्राम में मिलाकर चटाने से क्षय का नाश होता है।

4. मक्खन, शहद और शक्कर खानेवाला क्षयरागी पुष्ट होता है।

खाँसी

1. कत्था, गोंद बबूल और मुलहठी प्रत्येक 10-10 ग्राम। तीनों को कूट-पीस, कपड़छन कर अदरक के रस में 2-3 घण्टे घोटकर बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। एक-एक गोली मुँह में रखकर चूसते रहें। खाँसी के लिए रामबाण है।

2. 1 ग्राम हल्दी की गाँठ को मुँह में रखकर चूसते रहें। रात्रि में भी हल्दी की गाँठ मुँह में डालकर

सो जाएँ।

3. अर्क (अकौड़ा, अकौआ) के फूल और काली मिर्च, दोनों समभाग लें और कूट-पीसकर 2-2 ग्रेन की गोलियाँ बना लें।

एक-एक गोली चूसते रहें। सस्ता परन्तु अत्यन्त प्रभावी योग है।

4. यदि बुढ़ापे के कारण खाँसी आती है और कफ नहीं निकलता तो दो ग्राम काले नमक की डली मुंह में डाल दें। चूसने का प्रयत्न न करें। जितनी अपने-आप घुलें, धुलने दें। पहली रात में ही लाभ प्रतीत होगा।

5. दिन में 3-4 बार 20-20 ग्राम बढ़िया बूरा फाँकने से भी खाँसी ठीक हो जाती है।

नोट– बूरा फाँकने से 2 घण्टा पूर्व और एक घण्टा पश्चात् जल न पीएँ। रात्रि में भोजन न करें। जल भी न पीएँ। यदि प्यास लगे तो गर्म दूध या तुलसी के पत्तों की चाय लें।

6. तुलसी के पत्ते 15, काली मिर्च 9, इन दोनों की चाय बनाकर पीने से खाँसी, जुकाम, बुखार, कफविकार, मन्दाग्नि आदि रोग दूर हो जाते हैं।

7. काली मिर्च कूट-पीसकर कपड़छन कर लो। बस, दवा तैयार है। 2 से 4 ग्रेन तक यह चूर्ण दिन में 2 बार शहद से चटाएँ।

8. बाँसा का पंचांग 50 ग्राम को जौ-कुट करके 250 ग्राम पानी में औटाएँ, जब आधा पानी रह जाए तक उतार लें और मलकर छान लें। 20-20 ग्राम दवा दिन में 3-4 बार दें। रक्तपित्त (नकसीर), दमा, खाँसी और क्षय रोग के लिए अचूक औषधि है। बाँसा की प्रशंसा में कहा गया है-

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी काशी किमर्थमवसीदति।।

बाँसे से विद्यमान रहने और जीवन की आशा होने पर रक्तपित्ती (नकसीर) का रोगी, क्षयरोगी और खाँसी का रोगी कष्ट क्यों उठा रहा है?

9. बाँसे के 8-10 पत्ते आधा किलो पानी में उबालें। आधा रहने पर ठण्डा करके एवं मिश्री मिलाकर पिला दें। खाँसी के लिए अद्‌भुत औषधि है।

10. बाँसे के पके हुए पीले पत्ते में थोड़ा-सा सेंधा नमक और दो कालीमिर्च रखकर चूसने से सब प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है।

11. केले के सूखे पत्तों की राख बनाकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गर्मी में नमक तथा शीतकाल में शहद मिलाकर चटाने से चाहे कैसी भी खाँसी क्यों न हो, शीघ्र आराम हो जाता है।

12. अदरक का रस 6 ग्राम, मधु 6 ग्राम। दोनों को मिलाकर चटाने से श्वास, सर्दी का जुकाम, कफ और अरुचि रोग दूर होते हैं।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

आर्य–संस्कृति की श्रेष्ठता

लेखकः पं० मदनमोहन विद्यासागर

दवाइयाँ देखिये। चार आने की दवा। बाजार में कीमत सवा रुपया। एक रुपया व्यर्थ का भार। दूसरे प्रकृति का नियम यह है कि जो मनुष्य जहाँ रहता है, उसके स्वास्थ्य की समस्त सामग्री वहीं एकत्रित होती है। विलायती दवाइयों का वहाँ असर कैसे हो।

(2) अब जरा वेश–भूषा को लीजिये। पाश्चात्य देश से सुसज्जित व्यक्ति पास से गुजरता है। उसका हृदय दयापूर्ण है। पर बीमार के सिर पर पट्टी कैसे बाँधे? क्या चीज फाड़े? दूसरी तरफ एक भारतीय आता है। चार–पाँच गज की धोती है। चार इंच पट्टी फाड़ दे या आधा गज कपड़ा फाड़ दे, उसका नुकसान नहीं होता। उसको भार नहीं मालूम पड़ता। एक स्थान पर पोशाक ने सेवा करने में बाधा डाली और दूसरे स्थान पर वही सहायक बन गयी।

दूसरे, इस पोशाक ने गरीब–अमीर, छोटे-बड़े के भेद को पैदा कर दिया है! साधारण मनुष्य 'बाबू' के पास जाने में ही घबराता है। तीसरे, इस पोशाक में मनुष्य सर्वत्र स्वतन्त्रता से जा नहीं सकता। उसके उठने–बैठने के लिये विशेष प्रकार के स्थान, सामान एवं परिस्थिति की जरूरत है। दूसरी ओर ऐसी बात नहीं है। चौथे, इस पोशाक में अतिथि बनकर जाइये तो गृहस्थ के ऊपर भार पड़ता है। सोना हो तो पोशाक दूसरी चाहिये। क्योंकि कोट पैंट में बल पड़ जाने का डर है।

(3) सजावट–पाश्चात्य सभ्यता में बाहरी तड़क–भड़क को स्थान ज्यादा है। फर्नीचर न हो तो मनुष्य असभ्य समझा जाता है। पाश्चात्य भावनाओं ने इतना प्रभाव किया है कि 'सभ्य' कहाने के लिये इन व्यर्थ की वस्तुओं का होना आवश्यक–सा हो गया है।

कमरा ऐसा सजाया जाता है कि साधरण आदमी अन्दर आने से ही घबराते हैं–शायद कालीन खराब हो जाय, फर्नीचर मैला हो जाय। मनुष्य मनुष्य के पास बैठने से घबराता है। पर अमरजीवी बाबू की चटाई किसी को अपने पास आने से नहीं रोकती।

(4) पाश्चात्य सभ्यता में सौन्दर्य के लिये स्नो, क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक आदि हैं। भाँति–भाँति के, बालों को सफेद करने वाले तैलादि हैं। ये सब ऊपरी टीम–टाम के पदार्थ हैं जो कि चमड़े को खराब करते हैं, खुरदरा करते हैं। दूसरी ओर भारतीय गृहिणी उबटन, शुद्ध तैल, घृत मर्दन करती हैं, जो रोमकूपों के द्वारा शरीर के अन्दर जाकर शरीर की त्वचा को स्निग्ध, तेजस्वी, लचकीली बनाते हैं। कम खर्च में अधिक आरोग्य।

इससे एक इस रहस्य का भी पता चलता है कि भारतीय सभ्यता अन्तर्दृष्टि रखती है, अन्दर से

अधिक साफ रहना चाहती है। इसके सर्वथा विपरीत पाश्चात्य सभ्यता बाह्य शोभा, शृंगार और बनावट को पसन्द करती है। शायद यही एक कारण है कि पाश्चात्य राजनीति की टोकरी खोलें तो उसके अन्दर से षडयन्त्र और काले कारनामे ही दिखायी पड़ते हैं।

यही बात अन्य प्रकार के शृंगारों की है। पुष्पों से सजाना भारतीय सभ्यता का एक विशेष भाग है।

(5) खान-पान के तरीके को देखिये। भारतीय सभ्यता में मद्य-मांस का सर्वथा निषेध है; क्योंकि प्राणिमात्र पर दया इसका मूलमन्त्र है।

शं द्विपदे, शं चतुष्पदे। शं नो ग्रावाणः।

इसके विपरीत हिंसक वृत्तिवाले ये लोग मद्य-मांसादि का भरपूर प्रयोग करते हैं।

एक और मजे की बात है। चार मित्र बैठे खा-पी रहे हैं। गिलास में चाय लेकर एक दूसरे की स्वास्थ्यकामना करते हुए स्वयं पीते हैं। स्वास्थ्य दूसरे का बढ़ाना हो तो स्वयं पान करने से कैसे बढ़ेगा? दूसरी ओर भारतीय सभ्यता आत्मसन्तोष के लिये 'अतिथि' को खिलाती है।

(6) प्रकृतिद्रोह पाश्चात्य-सभ्यता का विशेष गुण है। प्रकृति ने हमको नाना प्रकार के अन्न-वनस्पति, दुग्ध-घृतादि दिये हैं। उनका वैसा ही प्रयोग सर्वोत्तम है। पानी को पानी के रूप में पीना सर्वोत्तम; पर ये लोग पानी की बरफ आदि बनाकर पुनः इससे पानी को ठण्डा करवाकर प्रयोग करना सिखाते हैं। परिणामतः अपव्यय और मन्दाग्नि।

इसके विपरीत भारतीय सभ्यता वास्तव में शाक-मूलाहार की प्रचारक है। प्रकृति ने जैसा दिया है, उसमें कम से कम परिवर्तन करके उपयोग करने को कहती है।

(7) चिकित्साशास्त्र के दृष्टि-कोण में भी स्पष्ट भेद है। इसका उद्‌देश्य सेवा नहीं, रुपया कमाना है। बीमार को दवा इसलिये नहीं दी जाती कि उसे देना कर्तव्य है; पर इसलिये कि उसने फीस दी है।

भारतीय सभ्यता क्योंकि त्यागवाद की पोषक है, इसलिये इसका मूलमन्त्र चिकित्सा में 'उपवास' है। क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता भोगवादी है, इससे उसमें उपवास नहीं।

भारतीय सभ्यता में 'शौच'-शुद्धि जीवन की उन्नति का आवश्यक अंग है; परिणामतः सर्वप्रथम ही शुद्धीकरण, विरेचन है। पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली बीमारी को दबाती है, निकालती नहीं।

(8) शिक्षण में सदाचार, व्यायाम, खेल-कूद को इतना स्थान नहीं। कल्चर, सैक्रिफाइस, सर्विस का कोई स्थान नहीं। विद्या का उद्‌देश्य रुपया कमाना है, उपाधि प्राप्त करना है; जबकि भारतीय सभ्यता का मूलमन्त्र है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

पाश्चात्य विद्याविधान बहुत खर्चीला है। यह सिस्टम ही कमर्शियल भावनाओं से भरा पड़ा है; जबकि भारतीय विधान है-पेड़ों के नीचे श्रेणियाँ, जंगलों में झोपड़ियों में निवास। पाश्चात्य-सभ्यता में

स्टडी, राइटिंग, रीडिंग का स्थान ज्यादा है, नॉलेज का कम। वे यह कहते हैं–एक झूठा भी यदि सत्य बोलने के दस लाभ बताता है और सच्चा यदि दो तो इन दोनों में झूठा 'बेस्ट स्टूडेण्ट' है। विद्या का जीवन के साथ सम्बन्ध न जोड़कर वे दिमाग से जोड़ते हैं।

(9) 'स्वावलम्बन' का शब्द दोनों प्रयोग करते हैं। पर इसके अभिप्राय में दोनों का महान् भेद है।

भारतीय सभ्यता शरीर और मन से परिश्रम करके यथासाध्य सब आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करना सिखाती है। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता इस उत्पादन में भी व्यापार–बुद्धि लाकर यन्त्रवाद का प्रचार करती है।

जब तक दुनिया में यन्त्रवाद है, तभी तक पूँजीवाद है। पूँजीवाद के कारण ही सब अशान्ति है। यन्त्रवाद भोगवादी प्रकृति की उपज है, जो कि पाश्चात्य सभ्यता के हर एक पहलू में छिपी है।

(10) पाश्चात्य जीवन का उद्देश्य क्या है, कुछ पता नहीं। शायद 'खा, पी और मौज कर' हो। भारतीय जीवन सोद्देश्य है।

'मनुर्भव' (ऋग्वेद)–तू सच्चा मनुष्य बन। इसके लिये यम–नियम आदि का पालन, पंचमहायज्ञों का विधान, आश्रम व्यवस्था आदि का विधान है। परन्तु ऐसा कोई भी मार्ग पाश्चात्य सभ्यता में नहीं।

(11) हर बात में प्रोफेशनलिज्म या कमर्शियलिज्म का रंग है; जब कि इधर सेवा, त्याग, विद्या का ख्याल है।

(12) 'मनुष्य' को जीवन में क्या चाहिये? 'अन्न, वस्त्र, निवास, विद्या।' फिर जिस संग में वह रहता है, उसमें अच्छा नाम। 'अन्न–वस्त्र–विद्या–निवास' पर दोनों के दृष्टिकोण में भेद है, ऊपर निदर्शन किया जा चुका है। इसमें भारतीय दृष्टि व्यापारिक नहीं है, वह व्यावहारिक है–अर्थात् ये मनुष्य के पूर्ण विकास के लिये आवश्यक है। इसमें व्यापारिक बुद्धि अत्यन्त नीच भावना है। क्योंकि मेरा शिशु मेरे दूध के बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिये मैं उससे कुछ रिटर्न लूँगी–क्या कोई जननी ऐसा सोचती है? वह समझती है कि 'अन्न' जरूरी है, इसमें व्यापार–बुद्धि अमानवीय है।

परन्तु पाश्चात्य सभ्यता व्यापारिक है। परिणामतः 'मानव निर्माण' से उसका ध्यान हटकर 'समाजनिर्माण' पर अधिक है। उसका ध्यान मनुष्य का 'मानसिक, शारीरिक' विकास कैसे हो–इस पर इतना नहीं, जितना कि सांगिक। सहकार समिति सम्बन्धी कार्यवाहियों पर है। इसलिये उसकी चाल में कोई ऐसी चीज नहीं, जो मनुष्य की आवश्यकता पूर्ण करके उसका पूर्ण विकास करा सके। परिणामतः मनुष्य कमजोर रहता है।

भारतीय सभ्यता में 'उत्तम मनुष्य' बनाना प्रथम कर्तव्य है। जब मनुष्य उत्तम बनता है, तब स्वभावतः ही उत्तम समाज बन जाता है; क्योंकि मनुष्यों के समुदाय का नाम ही तो समाज है। इस सूक्ष्म भेद को भी समझना चाहिये।

(13) यदि हम ऊपर की बात को समझें तो एक और बात समझ में आती है। पाश्चात्य पद्धति

में मुद्रा–रुपया पूँजी का स्थान बहुत ऊँचा है। क्योंकि सांगिक अभिवृद्धि के लिये इसकी आवश्यकता है। जीवन के लिये रुपया जरूरी नहीं है। पर पाश्चात्य सभ्यता का केन्द्रबिन्दु रुपया ही है। जीवन खर्च करके, शारीरिक शक्तियाँ घटा करके भी रुपया कमाना उनका लक्ष्य है। समय खर्च करके रुपया कमाना। एक बार मैं एक मित्र के साथ दूसर दर्जे में बैठा मद्रास से देहली आ रहा था। वे बात–बात में कहने लगे कि इससे अच्छा तो सीधे विमान द्वारा पहुँच जाना है। मैंने पूछा–'क्यों?' कहने लगे कि 'जितना समय इसमें लगेगा, उतने में मैं कई सौ रुपया कमा सकता हूँ।' उनके पास लाखों की सम्पत्ति है।

दो दिन में वे निस्सन्देह अपनी व्यापारिक वृद्धि करके उनका जो समाज में स्थान है, उसे बढ़ा लेगें; पर सोचना तो यह है कि उन्होंने अपना अर्थात् अपने शरीर और मन का कितना विनाश किया। उतना रुपया कमाने में कितना असत्य बोला होगा।

पूर्वीय सभ्यता में 'रुपये' का इतना प्राधान्य नहीं, इसका मतलब ही क्या? व्यक्तिगत जीवनविकास मुख्य, सांगिक जीवन विकास नहीं। 'शतायुर्वै पुरुषः।' इसीलिये–**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।** की प्रार्थनाएँ हैं।

धन के लिये इतनी हवड़–धवड़, आपाधापी, आडम्बर क्यों? मेरा एक मित्र यूरोप से आया। कहने लगा कि 'लंदन का बाजार ऐसा है, जिसमें कोई किसी से बात करता नहीं दीखता, सब इधर–उधर दौड़ते नजर आते हैं। बड़े 'बिजी' रहते हैं।'

मैंने पूछा कि 'क्या किसी को किसी से कोई मतलब नहीं? कहने लगे–'बिल्कुल नहीं।'...... किसी को किसी के लिये सोचने की फुर्सत नहीं।'

'तो क्या सबको अपनी पड़ी है?' 'हाँ ! हाँ !!'......कृपया पाठक लन्दन बाजार की मनोवृत्ति को समझने की कोशिश करें।

(14) पाश्चात्य सभ्यता में स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि के लिये न होकर 'कामसिद्धयर्थ' है। 'धर्म', 'अर्थ', 'मोक्ष' में स्त्री–पुरुष का परस्पर कोई सहकार नहीं।

एक मेरे मित्र अमेरिका से वापस आये, तब उनसे मेरी मुलाकात हुई। जब उन्होंने समाचार पत्र खरीदना चाहा, तब मैंने अपना देकर कहा, 'काहे को खरीदते हो? हमारे पास है।'

कहने लगे–'देखो, भाई! वहाँ तो पति भी यदि समाचार पत्र खरीदे तो पत्नी अपना अलग लेगी। सबके अकाउन्ट्स अलग, कमरे अलग ...., वह अलग।' .... पृथकत्व की भावना।

साथ ही यह 'काम–सिद्धयर्थ' सम्बन्ध भी 'इटर्नल' नहीं। इसमें दीर्घता न होकर सर्वत्र तलाक–ही–तलाक है।

इसके विपरीत विशुद्ध भारतीय सभ्यता में विवाह नित्य है। स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध अच्छेद्य–अटूट है।

भारतीय सभ्यता न केवल स्त्री–पुरुष के 'पति–पत्नी' सम्बन्ध की दीर्घता एवं व्यापकता को मानती है पर पारिवारिक बान्धव्य की शृंखला को भी दृढ़ मानती है। 'संयुक्त–कुटुम्ब–पद्धति' आत्मौपम्यका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण है। ❁❁❁

है 'सत्यार्थ प्रकाश' महावरदान

लेखक : प्रियवीर हेमाइना, नई दिल्ली, मोबा. 7503070674

'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रंथ विख्यात,
लेखक दयानन्द भी हैं ख्यात।
उसी की रचना यही विशेष,
विश्व की थाती यही विशेष।।

'सत्यार्थ प्रकाश' है वह ग्रंथ,
जो है देता सत्य का पंथ,
भण्डार सत्य का है इसमें।
प्रहार असत्य पर है इसमें।।

देखिए समुल्लास प्रथम ही,
ईश्वरनामव्याख्या प्रथम ही।
ईश-गुणों का वर्णन ऐसा,
कहीं नहीं है इसके जैसा।।

सन्तान-सुशिक्षा कैसी हो,
सुशिक्षा-व्यवस्था कैसी हो?
दिया है इसमें सुन्दर ज्ञान,
भक्ष्याभक्ष्य का दिया विधान।।

राजधर्म का इसमें कथनम्,
सभा-त्रयी का उत्तम कथनम्।
होवे धर्म से सब ही न्याय,
कर-ग्रहण में ना हो अन्याय।।

है मत-मतान्तरों की चर्चा,
सत्य पर परखने की चर्चा।
होवें विदित उनके गुण-दोष,
जिससे जन-जन बने निर्दोष।।

गृह-आश्रम का वर्णन विशेष,
कमी ना कोई छोड़ी शेष।
सबसे ही श्रेष्ठ है गृहाश्रम।
चलते इसी से अन्य आश्रम।।

पढ़े सब ही 'सत्यार्थ प्रकाश',
जिससे मिल रहा सर्वप्रकाश।
प्रकाशित करें इससे जीवन,
हो सम्यक् जीवन-संचालन।।

वेदादि-सत्यशास्त्र-समन्वित,
है यह ग्रन्थ सबको समर्पित।
इस रचना का उद्देश्य यही,
हो अनृत तम से दूर मही।।

'सत्यार्थ प्रकाश' महावरदान,
मिलता है इसमें आर्ष ज्ञान।
चलकर इसकी शिक्षाओं पर,
बढ़ाएँ पद आनन्द पथ पर।।

चलकर इसकी शिक्षाओं पर,
बनें विश्वगुरु हम पृथ्वी पर।
कहलाएँ हम आचारवान्,
बन जाएँ हम संस्कारवान्।।

❁❁❁

प्रतिभा में पंख लगाइये

19 वर्षीय। वह युवती उस वक्त एक धनी परिवार के बच्चों की देखभाल करने वाली थी। बेहद भोली और सुन्दर। परिवार के मालिक का बड़ा लड़का उसकी अन्यतम सुन्दरता पर मुग्ध था। उसने उस युवती से शादी का प्रस्ताव रखा, पर उसके पिता को यह पसन्द नहीं आया। युवती गरीब, उन्हीं के टुकड़ों पर पलने वाली जो थी।

युवती के दिल को इस अपमान से गहरा धक्का लगा। उसने नौकरी छोड़ दी और पेरिस विश्वविद्यालय में आकर विज्ञान की पढ़ाई आरम्भ की। गरीबी की वजह से उसे बेहद तकलीफ झेलनी पड़ती थी। यहां तक कि जाड़े में शरीर में गर्मी पहुँचाने के लिए कुर्सी के नीचे सिकुड़ कर सोना पड़ता था। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और वर्षों की मेहनत के बाद आखिर सफलता ने उसके कदम चूम ही लिये। रेडियम के आविष्कार ने संसार में तहलका मचा दिया। उस युवती मैडम क्यूरी की छाप सारे वैज्ञानिकों पर पड़ी। उसे दो बार नोबल पुरस्कार मिला।

एक मामूली नौकरानी और कहाँ अपने जमाने की एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक–दो बार नोबल पुरस्कार की अधिकारिणी–कम ताज्जुब की बात नहीं लगती। भाग्य को प्रधानता देने वाले शायद एक स्वर से यह कह उठेंगे–इसमें इसकी क्या खूबी थी? यह तो उसके भाग्य का जोर था। लेकिन सम्भवतः वे यह भूल जाते हैं कि उसका यह भाग्य उसकी अपनी मेहनत का ही परिणाम था।

यह उसकी प्रतिभा ही थी जिसने उसके सोये हुए भाग्य को जगा दिया। उसे अन्धकार से निकाल कर प्रकाश के शिखर पर बैठा दिया।

सिर्फ मैडम क्यूरी में ही यह प्रतिभा रही हो, यह बात नहीं। प्रतिभा आप में भी है। आप भी अपने जीवन के सोये भाग्य को जगाकर उन्नति के शिखर पर पहुँच सकते हैं, पर कब? जब कि आप अपने अन्दर की सुषुप्त प्रतिभा को जागरुक बना देंगे।

प्रसिद्ध पत्रकार जेम्स डगलस ने कहा है–'जो शक्तियाँ आप में नहीं हैं, उनके अस्तित्व में विश्वास करने और इस विश्वास के बल पर उन्हें प्राप्त कर लेने की योग्यता का ही नाम प्रतिभा है। यही वजह है कि प्रतिभावान व्यक्ति साधारण से साधारण स्थल और विपरीत परिस्थितियों में भी अपने जीवन का विकास आसानी से कर लेते हैं। यह कहना बिल्कुल झूठ है कि आप प्रतिभावान नहीं हैं। प्रतिभा आप में भी है, पर आप स्वयं अपनी प्रतिभा से परिचित नहीं हैं।'

आज के युग के मनीषी मानसशास्त्री अलफ्रेड एलडर ने कहा था–'अपने 60 वर्ष के अनुभव के पश्चात् मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि हर इन्सान के दिल में प्रतिभा का स्वस्थ बीज छिपा रहता है, जो संकल्प–शक्ति के प्रभाव और लगन की नमी से अंकुरों के रूप में प्रस्फुटित हो सकता है।'

अपने अन्दर छिपे हुए प्रतिभा के इस बीज को प्रस्फुटित कर उसके सौरभ से स्वयं और सारे संसार को सुगन्धित करने के लिये आपको भी अपने जीवन का निश्चित दृष्टिकोण बनाना होगा। उसे संकल्प–शक्ति का प्रकाश और लगन का जल पहुँचाना होगा।

सबसे पहले जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास और संकल्प–शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है तभी आपका व्यक्तित्व सबल और प्रभावोत्पादक बन सकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध व्यवसायी एंडर कारनेगी ने अपना जीवन जब आरम्भ किया था, उसके पास नाम मात्र को भी कुछ नहीं था। प्रति घंटा काम करने के लिये उसे सिर्फ एक पैनी (एक आना) मिला करती थी, पर आज वह वहाँ के प्रमुख करोड़पतियों में से हैं।

जान डी. राकफेलर अपने जमाने में संसार का सर्वश्रेष्ठ धनी माना जाता था, पर एक दिन ऐसा भी था जब उसकी गरीबी और तत्कालीन परिस्थिति देखकर उसकी प्रेमिका के पिता ने उसे अपनी बेटी देने से इन्कार कर दिया था।

राष्ट्रपति ट्रू मैन आज के राजनैतिक विश्व के सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति थे, पर पहले वे महज 175 रुपये मासिक पर एक मामूली टाइमकीपर थे।

कार्नेगी, राकफेलर और ट्रू मैन की इस सफलता में किसका हाथ है? निस्सन्देह ही उनकी प्रतिभा का, उनके दृढ़ आत्म–विश्वास का और उनके आत्म–संकल्प का।

उपर्युक्त महापुरुषों की भाँति आपके जीवन–प्रवाह में प्राण भरिए। समतलता और समझौते के साथ बंधे मत रहिए। जीवन में अभिव्यक्ति के प्रखर बबंडर आने दीजिए। मोहम्मद ने कहा है कि अन्धे वही होते हैं जो नीचे देखा करते हैं, बहरे वे होते हैं, जो पड़ौसियों के सन्देह, शंका और निराशायें सुना करते हैं और मुर्दे वही होते हैं जो गिरे हुए रहना चाहते हैं। आप अपना आत्मविश्लेषण कीजिए और मृतकों जैसे शैथिल्य और निष्क्रियता से मुक्त होने के लिए सारे संकल्प का जोर लगाइये।

आलोचना एक भयानक चिनगारी है। जरा–सी असावधानी से यह भयंकर विस्फोट का कारण बन सकती है। खामख्वाह आलोचना के चक्कर में पड़कर आप अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग ही करेंगे। किसी को बुरा कहने के बजाय यह जानने और समझने की चेष्टा कहीं अच्छी है कि आखिर वह बुरा क्यों है?

खलील जिब्रान के कथनानुसार अक्ल एक ऐसी औरत है, जिसका दिल जाता है नरक की तरफ और दिमाग स्वर्ग की तरफ। प्रतिभा पर विवेक का अंकुश बनाये रखिये, उसे दिल की पहाड़ी नदी के बीच अकेली मत छोड़ दीजिये, अन्यथा वह छोर को निगाह में रखे बिना ही पथभ्रष्ट हो जायगी।

आलोचना की तरह ही हीनता की भावना भी कम जहरीली नहीं है। जब तक आपके दिल में हीनता की भावना मौजूद रहेगी, आप में आत्म–विश्वास और संकल्प–शक्ति का अभाव ही रहेगा और इनके अभाव में आपकी प्रतिभा बिल्कुल ही कुंठित होकर रह जायगी।

–शेष पृष्ठ सं0 31 पर

अब कभी नहीं

वह कुछ संकोच में पड़ गया“...... लेकिन माँ ....। मेरी तलवार पिता पर कैसे ..... ?” माँ ने बेटे को बीच में ही टोका–“ ..... इस बार मालबे की शान शायद बचने की नहीं बेटे! ..... तू मालवा की धरती पर पैदा हुआ है और इसका ऋणी है। यही तेरी असली मां है। तूने अगर इसकी लाज न रखी तो मेरी गोद तो क्या, इस क्षमामयी की गोद भी तेरी लाश को स्वीकार न करेगी। तुझमें इससे उपजे अन्न का खून है।” और उसकी आंखें आँसुओं से भर आईं।

नखतासिंह विक्षिप्त सा क्षण भर इधर–उधर देखता रहा, फिर माता के निकट आकर बोला–“ ..... तू चिन्ता मत कर माँ, बस अब आशीर्वाद दे .....।” और वह माँ के सामने झुक गया। मां ने बेटे का माथा चूम लिया और नखतासिंह उठा और झटके से देहरी के बाहर हो गया।

माँ चुपचाप बैठी रही। उसमें ऊहापोह उभरने लगा–कैसी लड़ाई है यह ..... बाप–बेटे पर तलवार उठायेगा। .... बेटा बाप पर! ..... तब उसका सुहाग कहाँ रहेगा?.....नहीं–नहीं, यह लड़ाई नहीं .....नहीं होनी चाहिये यह लड़ाई ... ।

तभी माँ की आँखों के सामने दूसरा चित्र उभरा–आदमखाँ ने मालवे पर चढ़ाई की थी और तहस–नहस कर दिया था। मालवे के राजपूत सरदार हरसिंह ने सब कुछ लुटते देख आदमखाँ को आत्म समर्पण कर दिया था। पर, यह उस राजपूतानी नारी को स्वीकार न हुआ। उसने कहा था “..... तुम हार मान लो, लेकिन मैं नहीं......।

हरसिंह ने समझाया था उसे, “जिन्दगी से बढ़कर और क्या चाहिये तुझे? मौत, या दर–दर की ठोकरें ...... ?” उसने उत्तर दिया था “मातृ–भूमि के लिये, धर्म के लिये, मनुष्यता के लिये वह भी सही। नखतासिंह बच गया तो, न बचा तो ..... ।”

और उसके भाग्य से नखतासिंह के लड़ाई के घाव पुर गये थे। पर, हरसिंह आदमखाँ का फौजदार बनकर चला गया था। और आदमखाँ ने जब अकबर से बैर ठाना तो उसने उसकी फौज छोड़कर अकबर का सेनापतित्व अंगीकार कर लिया था। मालवा का वैभव लूटकर आदमखाँ विद्रोही हो गया था। पर, अकबर ने उस पर चढ़ाई कर उसे राज्य–सीमा से निकाल दिया था। और अब हरसिंह बादशाह का सेनापति होकर मालवा पर फिर चढ़ा ही आ रहा था।

उसके आंसू अब तक सूख चुके। उसका मन घृणा से भर गया। वह अपने में ही फुसफुसायी ..... “जो पति थोथी जिन्दगी से प्यार करे, पत्नी को छोड़ दे, पुत्र को छोड़ दे, वह धरती की रक्षा क्यों कर सकेगा ..... ? धर्म–अधर्म उसके कहाँ?” और क्रोध के मारे उसकी आँखें लाल–लाल हो गयीं।

सन्ध्या भीगती जा रही थी। हरसिंह एक लाश के पास खड़े-खड़े बड़ी देर से न जाने क्या सोच रहा था। तमाम लाशों को लांघते हुए तभी अकबर ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा, "क्या सोच रहे हो हरसिंह? हमने तो फतह पायी न?"

हरसिंह की आँखें भरी हुई थीं "..... यह मेरे बेटे की लाश है और यह इसकी माँ की .... । ये दोनों मालवे की तरफ से जूझेऔर मेरी तलवार से ही.....। मैं तो सिर्फ अपने ही लिये लड़ा सिर्फ अपने लिये। .... और ये ....दरअसल, जीत इनकी हुई ..... इन्हीं की.....।" और वह बेटे की लाश पर भरी आँखें लिये झुक गया.....। पत्नी के चरण चूमे और बिलख पड़ा .....। तभी अकबर ने उसके कन्धे पर फिर हाथ रखा '.....ना समझ न बनो हरसिंह, तलवार उठाओ। .....।

इस बार भरे गले से ही, पर दृढ़ स्वरों में उसने कहा- "अब नहीं, अब कभी नहीं.....।"

भारतीय नारी निज की आहुति दे पति को प्रबुद्ध कर गयी थी.....।

❋❋❋

पृष्ठ सं० 29 का शेष-

जीवन में विचारों का बहुत जबर्दस्त हाथ रहता है। जब तक आपमें सुलझे हुए एवं श्रेयोन्मुख विचारों को अपनाने की शक्ति नहीं होगी, आप आत्म-विकास की किसी शर्त को पूरा नहीं कर सकेंगे। प्रतिभा में जड़ता और सड़ान वहीं आ जाती है, जहाँ विचारों के पोषणार्थ पूरी-पूरी सहूलियतें जुटाई नहीं जाती। स्वस्थ एवं नियोजित विचारों की सहूलियतें किसी से मांगने पर मिल जायें, ऐसी बात नहीं। इन्हें तो आपको संकल्पशक्ति और आत्म-विश्वास के बल पर ही जुटाना होगा। तभी आपकी प्रतिभा भी मुखरित हो उठेगी और आपका जीवन भी एक सफल जीवन बन जायेगा। ❋❋❋

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2016** का शुल्क बार-बार के पत्र लेखन के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष **2017** के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें। वर्ष 2017 का वार्षिक विशेषांक **शान्ता** तैयार हो चुका है शीघ्र ही आप तक पहुँचाया जायगा। लेकिन जिनका शुल्क जमा होगा केवल उन्हीं को। इसलिये आपसे पुनः निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भेजकर अपनी प्रत्येक माह की पत्रिका व वार्षिक विशेषांक प्राप्त करते रहें। आशा है पाठकगण हमें निराश नहीं करेंगे।

-व्यवस्थापक
तपोभूमि मासिक

परीक्षा

खेत काटे जा चुके हैं। अनाज खलियानों में इकट्‌ठा है परन्तु किसानों ने खेतों में पड़ी रह गई बालें बीनी नहीं हैं, कभी भी नहीं बीनते उन्हें। उन्हें पक्षी चुगते हैं, कभी-कभी कोई शीलोच्छ-वृत्ति वाला साधु अथवा गृही भी उन्हें इकट्‌ठी करते देखा जाता है। देश में ऐसे आदमी का मान होता है, क्योंकि वह अपरिग्रही है सबकी दृष्टि में अमित संतोषी है और निश्चित ही उसने अपने जीवन को तप के अर्पण कर दिया है।

महर्षि मुद्‌गल ऐसे ही शीलोच्छ-वृत्ति वाले महात्मा हैं। वे गृहस्थ हैं परन्तु जन-पदों में वे महर्षि का मान पाते हैं। चढ़ती धूप में वे खेतों में बालें बीन रहे हैं, उनकी पत्नी भी उनका हाथ बँटा रही है।

इसी तरह वे लगातार दो सप्ताह तक 'सीला' बीनते हैं और इतनी अवधि में वे 34 सेर (एक द्रोण) अन्न एकत्र कर लेते हैं। पश्चात् जब पूर्णिमा आती है, अमावस्या पड़ती है तो उनकी कुटी में बड़ा समारोह होता है। इष्टीकृत यज्ञ और दर्श पौर्णमासयाग का आयोजन पूर्ण होता है। अतिथि भरपेट प्रसाद पाते हैं, निमन्त्रित भोजन करते हैं पश्चात् मुद्‌गल परिवार जीमने बैठता है, इस प्रकार महर्षि का परिवार मास में केवल दो बार भोजन करने के लिये प्रसिद्ध हो गया है।

पूरे 15 दिन बीत चुके हैं, सदा की भांति आज दर्श-पौर्णमासयाग सम्पूर्ण हुआ, उसमें पूरा दिन बीत गया परन्तु महर्षि अभी भी भोजन करने से विरत हैं, प्रतीक्षा कर रहे हैं अतिथि की।

"हो-हो-हो" बाहर बाल-वृन्द ने कोलाहल मचाया।

"विक्षिप्त है ...., पगला ...." वे किसी अर्द्धनग्न आदमी को घेरे चले आये।

महर्षि ने द्वार की ओर देखा बाल बिखेरे धूलधूसरित, आयं-बायं-सायं रटता एक पागल कुटी में प्रविष्ट हो रहा है......

"कौन है मुदगल? भोजन दे मुझे। भूखा हूँ मैं ......, नहीं-2 और कहीं भी कुछ न लूँगा मैं .....।"

"आइये, पधारिये ......" कह कर महर्षि अभ्यर्थना करते लपके।

"तू ही मुदगल है?"

"आपकी ही-कुटी है। सेवा स्वीकार करें ......"

महर्षि ने उन्हें एक पीठिका पर बिठाया, अपने हाथ से मल मलकर स्नान कराया। स्वच्छ परिधान पहनाया। फिर भोजन परोसा। न जाने कितना भूखा था वह पागल, महर्षि परोसते गये-वह खाता चला, यहाँ तक कि जो कुछ था-सब उदरस्थ कर गया।

और ऋषि-परिवार की वह पूर्णिमा यों ही गुजर गई बिना खाये। 15 दिन बीते कि पागल फिर आ पड़ा और चट कर गया सब कुछ। महर्षि भूखे, मंदस्मिति मात्र करते खड़े रहे पगले को विदा देते हुए।

यह क्रम तीन मास तक चला। निराहार रहते–रहते उनके शरीर टूट चले। वमन प्रारम्भ हो गया–शिरोशूल भी परन्तु उस परिवार में किसी ने उफ न की, आह न भरी।

'ओह, स्वागत है महर्षे!' दुर्वासा ऋषि बाघाम्बर से उठे।

''इन शब्दों से अपराधी बनूंगा मैं। बहुत छोटा हूँ आपसे?'' महर्षि मुद्‌गल ने हाथ जोड़े।

''अच्छा, विराजिये तो...... हंसे दुर्वासा ऋषि।

''एक प्रार्थना कि आज आप कुटी पर दर्शन दें, कुरुक्षेत्र में आपका आगमन मेरे लिये वरदान है आज।''

'मुद्‌गल जी!' कहते हुए गम्भीर हो रहे दुर्वासा, दूसरी ओर दृष्टि फिराकर कहते गये वे–आज 3 मास से प्रति पन्द्रहवें दिन तो मैं जीमता चला आ रहा हूँ आपके यहाँ, क्षमा करें, परीक्षा का कठिन कार्य यह जो मेरे ही सिर आ पड़ता है, वह कभी–कभी मुझे अतीव क्लेश देता है ...... 'स्वर मनस्ताप में डूबा था।

आज न मुद्‌गल हैं न दुर्वासा, आज कहीं किसी के सत्य–न्याय तप–विराग की परीक्षा भी नहीं होती परन्तु महर्षि मुद्‌गल सदा के लिये अमर हो गये।

❃❃❃

जो मृत्यु को जीतते हैं

1. सदाचार से ही मनुष्य को आयु की प्राप्ति होती है, सदाचार से ही वह सम्पत्ति पाता है तथा सदाचार से ही उसे इसलोक और परलोक में भी कीर्ति की प्राप्ति होती है।
2. सब प्रकार के शुभ लक्षणों से हीन होने पर भी जो मनुष्य सदाचारी श्रद्धालु और दोषदृष्टि से रहित होता है वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है।
3. जो क्रोधहीन, सत्यवादी किसी भी प्राणी की हिंसा न करनेवाला अदोषदर्शी और कपटशून्य है, वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है।
4. ऋषियों ने प्रतिदिन सन्ध्योपासन करने से ही दीर्घायु प्राप्त की थी।
5. खड़ा होकर पेशाब न करे, राख और गोशाला में भी मूत्र त्याग न करे, भीगे पैर भोजन तो करे परन्तु शयन न करे।
6. भीगे पैर भोजन करने वाला मनुष्य सौ वर्षों तक जीवन धारण करता है। भोजन करके हाथ–मुँह धोये बिना मनुष्य अपवित्र रहता है।

❃❃❃

॥ओ३म्॥

गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन का 118 वाँ वार्षिकोत्सव

दिनांक 23, 24 एवं 25 फरवरी 2018

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र बृजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराजा श्री महेन्द्रप्रताप जी द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय महात्मा नारायण स्वामी जी की तपस्थली 'गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन' भारतवर्ष की प्रमुख सामाजिक एवं राष्ट्रिय शिक्षण संस्था रही है। आर्यजगत् के महान वैदिक विद्वान स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज द्वारा इसकी स्थापना सन् 1901 में की गई थी।

अपने स्थापना दिवस से ही गुरुकुल ने राष्ट्र निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चिकित्सा, सेवा, साहित्य, इतिहास, अध्यात्म एवं राजनीति आदि विविध क्षेत्रों में यहाँ के स्नातक शिखर तक पहुँचे हैं। गुरुकुल ने शिक्षा के उन उच्च आदर्शों को भी अपनाया, जिसके चलते कभी सोलह देशों के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे तथा भारत के पूर्व राष्ट्रपति महामहिम डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद जी स्वयं गुरुकुल के दीक्षान्त समारोह में स्नातकों को आशीर्वाद प्रदान करने पधारे। महात्मा गांधी, पं0 जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, पं0 गोविन्द बल्लभपंत, पं0 मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, भारत कोकिला सरोजिनी नायडू जैसे स्वनाम धन्य राष्ट्र-विभूतियों की एक लम्बी श्रृंखला रही है जिन्होंने समय-समय पर पधारकर गुरुकुल के गौरव को बढ़ाया।

लेकिन धीरे-धीरे समय ने करवट बदली, 90 वर्षों तक सुचारु रूप से संचालित होने के बाद इसके पतन का दौर शुरू हुआ और सन् 2000 आते-आते संस्था पूर्ण रूप से बन्द हो गई। कुछ भ्रष्ट एवं स्वार्थी लोगों की गिद्धदृष्टि संस्था पर मडराने लगी, लेकिन फिर समय ने करवट बदली और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश ने इस संस्था की बागडोर पूज्य आचार्य श्री स्वदेश जी महाराज को सौंप दी।

पूज्य आचार्य श्री के अथक प्रयासों से गुरुकुल अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने लगा है। अल्पकाल खण्ड में ही गुरुकुल की दशा एवं दिशा दोनों ही बदल चुकी हैं। गुरुकुल समिति ने वार्षिकोत्सव के रूप में भव्य एवं विशाल आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया है। इस सम्मेलन में भारतवर्ष के उच्चकोटि के वैदिक विद्वान एवं भजनोपदेशक तथा क्षेत्रीय जनता के अतिरिक्त हजारों की संख्या में देश, प्रदेश से आर्य समाज एवं आर्यवीर दल के कर्मठ पदाधिकारी एवं कार्यकर्ता पहुँच रहे हैं। अनेक गणमान्य अतिथि भी इस सम्मेलन में पधार रहे हैं।

आप सभी से निवेदन है कि सम्मेलन में पहुँचकर एवं अपना सर्वात्मना सहयोग कर कार्यक्रम को सफल बनायें। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है।

विशेषः- सम्मेलन में पहुँचने वाले सज्जनों की भोजन एवं आवास की व्यवस्था गुरुकुल की ओर से निशुल्क की गई है, परन्तु समय के अनुसार हल्का बिस्तर साथ में जरूर लायें।

की गयी प्रार्थना से साफ ध्वनित हो रहा था कि उनका जीवन मात्र शब्दज्ञान तक सीमित नहीं है अपितु क्रियात्मक भी है। उपासना परक व्यक्ति में जो आचरण पाया जाता है वही विनम्रता सरलता दोनों पति-पत्नी में दिखाई पड़ी जिसका उपस्थित श्रद्धालुजनों में गहरा प्रभाव पड़ा। माननीय कोठारी जी ने वेदमन्दिर की गतिविधियों से प्रभावित होकर भविष्य में भी जुड़े रहने का वचन दिया जिसका स्वागत आर्यजनों ने करतल ध्वनि के साथ किया।

20 दिनों तक चले इस यज्ञ में पण्डित कमलदेव जी मथुरा, श्री उदयवीर जी उस्फार मथुरा, महाशय बाबूलाल जी मदनपुरा मथुरा, श्री देवमुनि जी वानप्रस्थ अकबरपुर मथुरा, श्री लाखनसिंह व राजवीर सिंह माल मथुरा, श्री हरदेव जी नबाबगंज बरेली व श्री नरदेव जी भरतपुर ने भी समय-2 पर यज्ञ में उपस्थित होकर अपने भजन प्रवचनों के माध्यम से श्रद्धालुओं को लाभान्वित किया। यज्ञ की पूर्णाहुति पर माननीय श्री कृष्णवीर जी शर्मा और श्रीमती सरोज शर्मा ने मुख्य यजमान की भूमिका का निर्वहन किया सभी उपदेशकों को वेदपाठियों को वस्त्र और दक्षिणा प्रदान कर सम्मानित किया और दुबई से पधारे विनय शर्मा और उनके परिवार को भी शर्मा जी द्वारा सम्मानित किया गया। चारों वेदों का पारायण यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करने में ब्रह्मचारियों ने पूर्णनिष्ठा से सहयोग दिया।

वेदपाठ ब्रह्मचारी आकाश और ब्रह्मचारी अरविन्द ने मिलकर किया ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु ने भजनों के माध्यम से महर्षि महिमा, यज्ञ महिमा, ईश्वर महिमा परक भजनों के माध्यम से सुन्दर प्रस्तुति दी। ब्रह्मचारी सुधीर ने संगीत के माध्यम से संगति प्रदान की। ब्रह्मचारी सुनील शास्त्री, दिव्यानन्द, सच्चिदानन्द, रविकांत, देवव्रत, त्रिवेन्द्र, अमन, देवेश, राहुल, अभिषेक, राजकुमार, रवि, अनिल, जयपाल ने भी व्यवस्थाओं में मनोयोग से सहयोग दिया। गुरुकुल वृन्दावन के आचार्य श्री हरिप्रकाश जी और सभी ब्रह्मचारी कार्यक्रम के प्रति सर्वात्मना समर्पित रहे। ट्रस्ट के पदाधिकारी अध्यक्ष श्री सत्यप्रकाश जी, मंत्री श्री बृजभूषण जी आदि का भी वरदहस्त रहा।

मथुरा जनपद की सभी समाजें जिला आर्य प्रतिनिधि सभा के सभी पदाधिकारी कार्यक्रम की सफलता में सहायक रहे कार्यकर्ताओं के रुप में श्री भानुप्रताप मलिक, श्री योगेश आर्य और सन्तोष आर्य ने निष्ठापूर्वक पूरा समय दिया। कार्यक्रम के समापन पर हजारों की संख्या में लोग उपस्थित हुऐ। बाजना निवासी श्री मोतीलाल अग्रवाल के पुत्र श्री बृजेश अग्रवाल की पुत्री नन्दिनी के जन्मदिवस पर सभी ने आशीर्वाद प्रदान किया। श्री विनोद जी डेरी वाले बाजना जो इस पूरे कार्यक्रम के आधार स्तम्भ रहे भोजन व्यवस्था का सम्पूर्ण दायित्व लेकर उन्होंने अपना अप्रतिम सहयोग प्रदान किया। उपस्थित जन समुदाय ने हाथ उठाकर इस बात का समर्थन किया कि आगे से इस कार्यक्रम को और अधिक भव्यता प्रदान की जाये तथा आध्यात्मिक रूप से भटके लोगों को अधिक से अधिक संख्या में वैदिक पथ पर लाने के लिये वेदमन्दिर के इस परोपकारी कार्य से जोड़ा जाय जिससे उनका मानव जीवन सफल हो। इस पावन संकल्प के साथ ही कार्यक्रम का भव्य समापन हुआ।

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00
शंकर सर्वस्व	120.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)	
शुद्ध कृष्णायण	50.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00
विदुर नीति	40.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00
चाणक्य नीति	40.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00
नित्य कर्म विधि	32.00
वेद प्रभा	30.00
शान्ति कथा	30.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00
यज्ञमय जीवन	30.00
दो बहिनों की बातें	30.00
दो मित्रों की बातें	30.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00
चार मित्रों की बातें	20.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00
मील का पत्थर	20.00
भ्रांति दर्शन	20.00
दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
बाल मनुस्मृति	12.00
ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
दादी पोती की बातें	10.00
क्या भूत होते हैं	10.00
आर्यों की दिनचर्या	10.00
महाभारत के कृष्ण	8.00
ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
सच्चे गुच्छे	8.00
मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
गायत्री गौरव	5.00
महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
सफल व्यक्तित्व	5.00
सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2018 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाश[illegible] सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित